अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ का साप्ताहिक मुखपत्र

भूदान-यज्ञ

भूदान यज्ञ मूलक ग्रामोद्योग प्रधान अहिंसक क्रान्ति का सन्देशवाहक

वार्षिक मूल्य ६) ॥ सम्पादक : धीरेन्द्र मजूमदार ॥ एक प्रति २ आना

वर्ष-३, अंक-१४ ॥ राजघाट, काशी ॥ शुक्रवार, ४ जनवरी, '५७

आज का सबसे बड़ा रोग !

आज रामनाम की जगह सरकार के नाम ने ले ली है। सन् '४७ से हम लोग ज्यादा ही गुलाम बन गये हैं। पहले सरकारी मदद नहीं मिलेगी, ऐसा समझ कर ही हम काम करते थे। लेकिन स्वराज्य-प्राप्ति के बाद सरकारी मदद पर ही हम निर्भर हो गये हैं। वह मदद तो मिलेगी ही, ऐसा समझ कर पहले से दस गुना अधिक परिश्रम ही हम करते, तो हिंदुस्तान बहुत आगे बढ़ता। लेकिन लोग उल्टा समझ गये कि हमें तो कुछ करना-धरना है नहीं, सरकार को ही सब-कुछ करना है !

पर हम तो चाहते हैं कि सारी दुनिया को सरकारों से ही मुक्ति मिल जाय ! इसलिए अगर हम सरकारी मदद पर ही निर्भर रहेंगे, तो वह चीज बनेगी नहीं। आज यदि सारी दुनिया किसी रोग से पीड़ित है, तो वह इस सरकार रूपी रोग से ही तो पीड़ित है !

पेरय्युर, मदुरा, २४-१२ —विनोबा

बुद्धि-जीवियों और नौजवानों से—

(जयप्रकाश नारायण)

मिस्र या हंगेरी में जो कुछ हुआ, उसने फिर एक चेतावनी मानव-समाज को दे दी है कि अभी बेखबर नहीं होना है ! ऐसी शक्तियाँ समाज में काम कर रही हैं, जो एक दिन मनुष्य को ऐसे गढ़े में ढकेल देंगी, जिससे शायद मनुष्य कभी बाहर ही नहीं निकल सकेगा।

हम देख रहे हैं कि एक मिथ्या, असत्य और हिंसा का वातावरण चारों तरफ आज कायम है। जो बातें मिस्र के संबंध में कही गयीं, जो हंगेरी के संबंध में कही गयीं और जो आज भी कही जा रही हैं, वे अगर हमारे और आपके व्यक्तिगत जीवन में उसी तरह से कही जायँ, तो हर कोई हमें कहेगा कि ये लोग झूठे, गुंडे और बदमाश हैं। लेकिन आज ऊँचे से ऊँचे अंतर्राष्ट्रीय स्तर पर ऐसा व्यवहार किया जा रहा है। ऐसी हालत में हम सब लोगों को, खास करके उन लोगों को, जो शिक्षा से कुछ संबंध रखते हैं, जिनका काम पढ़ना और पढ़ाना है और जो ज्ञान-उपार्जन व ज्ञान-प्रचार कर रहे हैं, बहुत गहराई से सोचना चाहिए।

बुद्धि-जीवियों की दुर्बलता

खतरा अभी टल गया, ऐसा लगता है। लेकिन कोई कह नहीं सकता कि वास्तव में वह टल गया है, क्योंकि सत्य और न्याय की स्थापना मानव-जीवन में हो गयी है, ऐसा दावा अभी कोई कर नहीं सकता। हमारा देश भी अभी इस मामले में पिछड़ा हुआ ही है। आज इस मुल्क की अनेक महान् परंपराओं के बावजूद चारों ओर अंधेरा छाया हुआ नजर आता है। झूठ, दुराचार, दगाबाजी की हवा फैली हुई दिखती है। लेकिन इस देश का एक सौभाग्य रहा है कि महान् पुरुषों ने इसे सतत उबारा है और वे आज भी उबार ही रहे हैं। गांधीजी ने एक राह बतायी। उस पर चल कर विनोबा इन गहरे रोगों का हल भूदान-यज्ञ-आंदोलन के रूप में बता रहे हैं। लेकिन मैं पूछूं कि कितने मित्र हैं, जो उनके विचार पढ़ते होंगे ? जब कि आयजन होवर, बुल्गानीन, चौएन लाय या ईडन ने जो कुछ भी कहा, हम बड़े चाव से रोज़ ही पढ़ते हैं ! इन्हीं बड़े लोगों के उद्गारों पर हमने अपना और दुनिया का भविष्य आज छोड़ दिया है। लेकिन जीवन की बुनियादी बातें और समस्याओं का हल बताने वाले की बातें हम नहीं सुन रहे हैं। यह एक इंटलेक्चुअल ऑर्गन्स की क्षुद्रता की, बौद्धिक दुर्बलता की निशानी है। अक्सर मैं पढ़े-लिखों के बीच उठता और बैठता हूँ और जब उनमें मैं यह लापरवाही देखता हूँ, तो बड़ा दुःख होता है। विनोबा ने अभी तक जितना काम किया, वह बड़ा काम नहीं है, ऐसा कोई नहीं कह सकता। लेकिन आँख बंद करने पर भी दीख पड़ने वाला और कान बंद करने पर भी सुनायी दे सकने वाला ही बड़ा काम विनोबाजी करें, तब निःसंदेह आप जैसे पढ़े-लिखे लोग उनकी आवाज में अपनी आवाज मिलायेंगे ! बापू के जमाने में भी ऐसा ही हुआ था। दुनिया के महान् लोगों ने उनकी कीमिया देखी। लेकिन बहुत बाद में हमारे पढ़े-लिखे लोग उन्हें समझ सके। पर बुद्धिमानों के लिए यह कोई गौरव की बात नहीं है। होना तो यह चाहिए कि जो बात गाँव के किसानों को दस दिन में मालूम हो, वह पढ़े-लिखे लोगों को एक दिन में मालूम होनी चाहिए, अन्यथा इस पढ़ाई-लिखाई की या विद्यालयों की कीमत ही क्या है ? विद्यार्थी और अध्यापक यदि जितना प्रयास दूसरे विचारों और ग्रंथों को समझने के लिए करते हैं, उसका थोड़ा भी अंश वे इसमें दें, तो जिस शक्ति का दर्शन मुझे हो रहा है, वह उनको भी हुए बिना रह नहीं सकता। सन् '५७ में भूक्रांति का एक चरण हम पूरा करने जा रहे हैं। लेकिन शायद ही आपमें से कोई भाई-बहन ऐसे हों, जो सन् '५७ का यह महत्त्व समझ रहे हों। उनके लिए जैसे '५५–'५६, वैसे '५७ ! या ज्यादा से ज्यादा '५७ का इलेक्शन !

आज का जीवन-आधार बदलना होगा

लेकिन दुनिया की जो स्थिति हमने ऊपर बतायी है, उसके निराकरण का क्या दूसरा भी कोई तरीका है ? विनोबा की बातें अव्यावहारिक और दकियानुसी हैं, तो फिर आपके सामने दूसरी कौनसी राह है ? मैंने भी बहुत विचार किया, लेकिन मुझे कोई दूसरा रास्ता नहीं दिखायी देता। एक तरफ मनुष्य मनुष्य को खत्म करने के लिए तुला हुआ है और सारी शक्ति और संपत्ति आग को भड़काने में ही झोंक रहा है, तो दूसरी तरफ लोग शांति की प्यास में तड़प रहे हैं। बड़े से बड़े देशों के लोगों की यह भूख है। पर एक तरफ हम खतरनाक हथियार बनाते जायँ और दूसरी ओर शांति-शांति चिल्लाते रहें, यह कितनी विरोधी बात है ? क्या मनुष्य के भाग्य में यही बदा है कि वह सतत लड़ता ही रहे, शांति और संधि की चर्चा करता ही रहे और फिर से लड़ता ही रहे ? क्या इस सतह से वह ऊपर उठ ही नहीं सकता ? क्या ऐसा मानव-समाज बन ही नहीं सकता कि जहाँ युद्ध की चर्चा न हो और लड़ाइयाँ ही खत्म हो जायँ ? बड़ा गंभीर

शिक्षण या दंड-शक्ति ?

आजकल दुनिया में एक बड़ा भ्रम पैदा हो गया है कि सरकारों के कारण ही हम बचते हैं और अगर वे नहीं होतीं, तो हम बच नहीं सकते थे ! सैनिकीकरण और सैनिक-संधियाँ सरकारें करती जा रही हैं और जनता को वे पसंद नहीं हैं, फिर भी यह भ्रम कायम है ! लोगों का खेती, उद्योग, प्रेम, धर्म आदि के बिना नहीं चलेगा या विवाह आदि के बिना कुटुंब-व्यवस्था नहीं चलेगी, यह तो हम समझ सकते हैं, लेकिन सरकार के बिना जनता का चल नहीं सकता, यह हम नहीं समझ सकते। ऊपर की वस्तुओं-जैसी जरूरतों में हम सरकार की गिनती ही नहीं करते ! जनता को वास्तव में उसकी जरूरत ही नहीं है। समाज के प्रवाह में वह चीज बन गयी, इतना ही ! समाज में एकरसता का निर्माण करने में हम समर्थ नहीं बन पाये, अनेक भेदों में फँस गये, अविरोध से काम करने का शिक्षण नहीं मिला, फलतः उसके बदले राजसत्ता से हम काम लेना चाहते हैं और बदकिस्मती से शिक्षण के बदले, तालीम के बदले, दंडशक्ति का ही आधार लेना चाहते हैं !

(पेरय्युर, मदुरा, २४-१२) —विनोबा

www.vinoba.in

सवाल है । क्या इसका कोई जवाब है ? युनायटेड नेशन्स में सारे राष्ट्र इकट्ठे हों और सर्वसम्मति से एक चार्टर बना कर सब उस पर दस्तखत कर दें कि अभी अब हम युद्ध नहीं करेंगे, तो क्या उसीसे मानव-समाज में शांति का राज्य कायम होगा ? आज इसीकी चर्चा और प्रयत्न हो रहे हैं । लेकिन इतिहास बताता है कि इतने से कभी काम हुआ नहीं और "हम लड़ेंगे नहीं," यह तय करने के बाद भी लड़ाइयाँ हुई ही हैं ! संधियों पर हस्ताक्षर करने वाले न अमर रहे, न वे सदा शासन में ही रहे ! तब यदि दूसरे लोग आयें, तो वे क्या करेंगे, कौन कह सकता है ? इसलिए हिंसा और लड़ाई की जड़ ही हमें ढूँढ़ कर काट देनी चाहिए । गांधीजी ने यही राह बतायी कि मानव-जीवन में यह जो संघर्ष, हिंसा, शोषण, उत्पीड़न, अन्याय, विषमता है, उसकी जड़ें ही हमें खोज कर काट देनी होंगी । जिस आधार पर हमारा सारा जीवन आज खड़ा है, वह आधार यदि बना रहता है, तो शांति कभी हो नहीं सकती और लड़ाइयाँ और संघर्ष भी बंद नहीं हो सकते । परिणामतः मानव का ही अंत होने का प्रसंग उपस्थित हो गया है। इसलिए हमें अपने जीवन का यह गलत आधार ही बदलना होगा । वह आधार है, केवल अपना-अपना ही सोचना ! हमारा चिंतन हमारे छोटे से स्वार्थों तक सीमित है । हमने अपना सामाजिक दृष्टिकोण समाप्त कर दिया है। वस्तुतः हम सबकी जड़ें समाज के अंदर हैं। पर हम यदि इन जड़ों को काट देते हैं, तो हम वैसे ही मर जायेंगे, जैसे पेड़ की जड़ें काटने पर पेड़ सूख जाता है। समाज से कट कर हमारा कोई जीवन रह नहीं सकता। लेकिन फिर भी आज हम समाज के स्वार्थ का नहीं, अपने ही स्वार्थ का विचार करते हैं। जब तक यह अंतर्विरोध कायम रहता है, मानव-जीवन में सुख और शांति आ नहीं सकती। दुनिया में अनेक विचारकों ने इसके लिए अनेक राहें बतायी हैं । लेकिन वे 'ग्रेटेस्ट गुड ऑफ दी ग्रेटेस्ट नंबर' (अधिकतम लोगों का अधिकतम सुख) तक ही पहुँच पाये हैं । पर इससे समस्या कभी हल नहीं हुई, न होगी। इसलिए हमें अब व्यक्तिगत दृष्टिकोण से नहीं, सामाजिक दृष्टिकोण से ही सोचना होगा और पूरे मानव-धर्म का ही विचार करके उसका पालन करना होगा। वह किसी पंथ, जाति और देश में सीमित नहीं रह सकता। उसमें विश्वमानवता का ही संदेश निहित है। भूदान-यज्ञ को हम इसी दृष्टि से देखें । चंद लोगों को जमीन या संपत्ति दिला देने का ही स्थूल अर्थ उसमें नहीं है ।

समाज धर्म की दीक्षा

विनोबा यह तो नहीं कह रहे हैं कि सारा छोड़छाड़ कर, लंगोटी बाँध कर निकल पड़ो ! वे इतना ही कह रहे हैं कि तुम सामाजिक जीव हो, समाज में रहते हो, दूसरे लोगों से तुमने प्राप्त किया है, पर तुम यह सोचते हो कि जो कुछ तुमने प्राप्त किया है, वह तुम्हारा है, तुम उसको मुट्ठी में बाँध करके रखते हो। यह तुम्हारा सच्चा धर्म नहीं है। तुम्हें तो यह सोचना चाहिए कि हम जितने लोग समाज में रहते हैं, सब एक-दूसरे से सहयोग करते हैं और एक-दूसरे के सहयोग से जब पैदा करते हैं, तभी समाज में वह पैदा होता है। यह सब हमारा नहीं है। अतः हमको बाँट कर ही खाना है और बाँट कर ही जीना है। दया के नाते नहीं, समाज-धर्म के नाते, सामाजिक जीव के नाते, जो कि हमारा कर्तव्य है। समाज में सुख हो और शांति हो, इसलिए तथा विश्वशांति हो, इसलिए भी।

आज यदि इस तरह हमारे जीवन का आधार पलट जाता है, तो युद्ध की, अन्याय की, शोषण की, साम्राज्यवाद की; सबकी जड़ें कट जाती हैं और तब यह संभव हो सकता है कि सदा के लिए मानव-समाज में सुख और शांति का साम्राज्य हो । तब फिर हम बैठ कर यह सब सोच सकते हैं। लेकिन पहले इस कीचड़ से तो निकलें, जो हमें पशुता में ही गर्क कर रहा है ! जानवर की-सी जिंदगी का जमाना बीत जाय और कीचड़ की जिंदगी से हम बाहर आ जायँ, तभी हम मानव-विकास की बातें सोच सकते हैं ।

यह युग की माँग है

सर्वोदय की साधना के रूप में भूदान-संपत्तिदान आदि का जो काम चल रहा है, उसके द्वारा विनोबा हमें इस कीचड़ से निकलने की ही राह दिखा रहे हैं। आज कहीं-कहीं इसे अव्यावहारिक कार्यक्रम भी बताया जाता है। लेकिन इसके भीतर युग की ही पुकार छिपी है। इसलिए कि दुनिया ही अब कह रही है कि अहिंसा के सिवाय कोई दूसरा रास्ता नहीं है। दुनिया ने बड़ी-बड़ी क्रांतियाँ और उनकी असफलताएँ भी देख लीं। अभी जवाहरलालजी ने बताया कि "दस वर्ष तक कम्यूनिस्ट राज्य हंगेरी में रहा, फिर भी उसने उसे ठुकरा ही दिया !" ऐसा क्यों हुआ ? इसलिए कि अब डंडे के जोर से कोई काम हो नहीं सकता । सामाजिक जीवन, समाज के लिए जीने की वृत्ति जबरदस्ती से ग्रहण नहीं करायी जा सकती। आप कहेंगे कि इसके लिए सैकड़ों वर्ष लगेंगे। मैं इसे नहीं मानता, क्योंकि जमाने की ही यह माँग है । लेकिन फिर भी मनुष्य हजारों वर्षों में क्या यहीं तक नहीं पहुँचा कि नागासकी और हिरोशिमा पर बम बरसा कर मानव को वह तहस-नहस कर डाले ! विज्ञान, कानून, राजनीति, अर्थनीति आदि के नाम पर हमने हजारों साल तक यही तो किया । अतः अगर अब गांधी और विनोबा के रास्ते पर चलते-चलते सैकड़ों वर्ष भी लग जायँगे, तो वह कोई बहुत देरी नहीं कही जायगी। लेकिन ऐसा भय रखने की कोई आवश्यकता नहीं है, क्योंकि जमाने की यह माँग है और समाज में आज बाँट-बाँट कर भोग करने का प्रयोग असंभव नहीं है। आज भी अनेक सोसायटियाँ, कम्यूनिटी आदि ऐसी हैं, जहाँ सब बाँट-बाँट कर उपभोग लेते हैं। हमें यही चीज सार्वत्रिक करनी है, जिसकी राह भूदान-यज्ञ बता रहा है।

हमें कहाँ जाना है ?

आप नौजवान लोग हैं। क्रांति की बातें करते हैं और आपके सामने आज यह क्रांति खड़ी है, जिसे आप देख नहीं पा रहे हैं ! पाँच साल में जो हुआ, क्या वह कम हुआ है ? उसकी ओर आप जरा देखिये । अब एक और नया क्रान्तिकारी कदम-तंत्रमुक्ति और निधिमुक्ति के रूप में उठाया गया है। अतः शिक्षक विद्यार्थी, बुद्धिवादी, सब पर यह जिम्मेवारी आती है कि वे इस आंदोलन को समझें और इसमें भाग लें। आज हमें जीवन का आधार ही बदल देना है और बाँट-बाँट कर खाने का सामाजिक जीवन बिताना है। यह पहली सीढ़ी है। नंदागिरी पर्वत तो वह है, जहाँ ऐसा समाज होगा, जिसमें सब सबका होगा, आवश्यकतानुसार बँटवारा होगा, शक्ति के अनुसार सब काम करेंगे। इसी पर्वत पर हमें पहुँचना है, तब विश्वशांति स्थायी रूप से हो सकेगी।

आवाहन !

विद्यार्थी कहते हैं, हमारी परीक्षा का काल निकट है। ठीक है, परीक्षाएँ दे दीजिये, अगर उसका भी मोह है ! लेकिन फिर एक साल का सारा समय इसमें लगा दीजिये। सही परीक्षा तो यही है। सन् '२२ की जनवरी में मौलाना आजाद का भाषण पटना में हमने सुना, जब कि हमारी परीक्षाएँ बहुत निकट थीं। लेकिन दूसरे दिन जो दृश्य देखा, कभी वैसा नहीं देखा होगा। सब छात्र पढ़ाई, परीक्षा आदि भूल कर राजेन्द्र बाबू के डेरे पर आँसू भर-भर कर भारत माता की सेवा की आशाएँ लेकर चले जा रहे हैं। फिर हमने सन् '४२ में देखा कि सैकड़ों विद्यार्थी गोलियाँ खा रहे हैं। आज भारत माता की सेवा की आशाएँ दुनिया की सेवा की आशाएँ बन गयी हैं। आज हमें दुनिया में विश्वशांति लानी है, इसलिए आज आपका पुनः व्यापक आवाहन हो रहा है !

इस आंदोलन का भार किसी हद तक हम लोगों ने उठाया। अब आप क्रांति के नेता बन कर इसे उठा लीजिये। हम लोग आपके सिपाही बनेंगे।*

*गया-कालेज के शिक्षकों और विद्यार्थियों के बीच दिये गये भाषण से, ता० १९-१२-५६ ।

जरा करके तो देखें !

दो साल के लिए सरकार को भी छुट्टी देकर तो जरा हम देखें ! अब पोस्टवालों को हफ्ते में एक छुट्टी मिली है। स्कूल-कॉलेजों को भी लंबी छुट्टियाँ दे देते हैं। तो कृपा कर सरकार को भी दो साल के लिए छुट्टी देकर देखा तो जाय कि क्या होता है ! कुछ भी नहीं होगा। हमारा यह सिर्फ अहंकार है, जो हम समझते हैं कि सरकार से ही सब कुछ होता है। क्या सरकार न हो, तो होली-दिवाली नहीं होगी ? अभी, चुनाव १५ मार्च के बदले १२ मार्च को ही पूर्ण हों, ऐसा तय हुआ, क्योंकि १५-१६ मार्च को होली आती है। कहा गया कि चुनाव के समय होली आ जाय, तो लोग होली ही खेलेंगे, वोट नहीं देंगे। स्पष्ट है कि जनता के लिए होली, चुनाव से ज्यादा जोरदार है। तो यह होली किसने तय की ? लोगों ने ही। इसीका नाम तो लोकशक्ति है और लोकशक्ति का ही परिणाम हमें राजसत्ता पर लाना है। अगर हिंदुस्तान में हम यह कर सकें, तो दुनिया में भी यह हो सकेगा, भले ही कुछ समय लग जाय ! लेकिन इस विज्ञान-युग में पहले के जमाने के पचास साल आज पाँच साल ही रह जाते हैं।

(चित्रकट्टलै, मदुरा, २३-१२) —विनोबा

www.vinoba.in

दुनिया से निजी मालकियत मिटाने का युग-कार्य

(विनोबा)

प्रश्न : ग्रामदान में और तो सब सध जायेगा, लेकिन यदि किसी गांव में जमीन कम हो और लोग ज्यादा और दूसरे गांव में इसके विपरीत स्थिति हो, तो सभी कैसे सुखी होंगे ?

उत्तर : जहाँ ज्यादा जमीन है, वहाँ के लोग पड़ोसी गाँवों को आमंत्रित करेंगे कि आइये, पाँच परिवार और यहाँ बस सकते हैं।

आज ऐसी ही स्थिति है। किसी गाँव, जिले, प्रान्त या देश में कम, तो किसी में ज्यादा जमीन रहती ही है। लेकिन जमीन पर किसी भी व्यक्ति, गाँव, समाज या देश की मालकियत तो नहीं है! मालकियत तो कुल दुनिया की है। हम ईश्वर की मालकियत कहते हैं, क्योंकि उस पर पंछी, प्राणी, जीव-जंतु इन सबका भी हक है। इसलिए आस्ट्रेलिया में जापान आदि देश वालों को या मध्यप्रदेश (नये) में तमिलनाड केरल वालों को जाने का पूरा हक है, क्योंकि दक्षिण केरल में एक वर्गमील में दो हजार लोग रहते हैं, तो विंध्य में दो सौ। आस्ट्रेलिया में गरम हवा के कारण समुद्र के किनारे ही लोग रहते हैं, लेकिन उसके भीतर प्रवेश किया जाय, तो पाँच गुना अधिक लोग वहाँ रह सकते हैं। हमारी ही संस्कृति, हमारा ही देश, आदि सब बातें आज बहुत छोटी हैं, क्योंकि विज्ञान के जमाने में ऐसे छोटे विचार लड़ाइयों को टाल नहीं सकते। इसीलिए आज 'ही' मत कहो, 'भी' कहो, तो दुनिया में शान्ति रह सकती है। एक जमाने में बड़े-बड़े समंदर देशों को तोड़ते थे, पर वे ही आज जोड़ते हैं, क्योंकि हवाई जहाज से अब चंद घंटों में ही इधर से उधर जाया जा सकता है। यह विज्ञान की देन है। इसीलिए आज कोई अलग-अलग नहीं रह सकता, प्रत्येक को विशाल हृदय बनाना ही होगा।

भूदान-यज्ञ की यह महत्त्वाकांक्षा है कि वह दुनिया भर में से ऐसी मालकियत मिटा देना चाहता है! लोग कहते हैं कि एक दिन में सिर्फ दस-बारह मील चलने वाला दुनिया से जमीन की मालकियत मिटाने की इतनी बड़ी बात कैसे कह रहा है?

पुराने जमाने में कौन देश कहाँ है, किसी को पता तक नहीं था। आज स्वेज और हंगेरी की खबरें दुनिया का बच्चा भी पढ़ता है, लेकिन उस जमाने में बड़े-बड़े राजाओं को भी इसका पता नहीं रहता था। लेकिन उसी जमाने में ईरान के झरथुष्ट्र, चीन के लाओत्से, हिंदुस्तान के बुद्ध और पैलेस्टाइन के ईसा मसीह दुनिया के धर्म-संस्थापक हो गये और कोई परस्पर को नहीं जानता था। लेकिन सर्वत्र धर्म-संस्थापना का विचार फैला, जैसे कि हवा इधर से उधर बहती है। सच्चे विचार के प्रचार के लिए ट्रेन, टेलीफोन, बिजली आदि की कोई जरूरत नहीं होती। उसके लिए 'ब्रॉडकास्ट'नहीं, 'डीपकास्ट' अर्थात् उसका आचरण चाहिए। सद्विचार का आचरण उसे जीवन की गहराई में ले जाता है। उसे फैलाने का काम तो फिर ये कौए और कोयल भी कर लेते हैं! इसलिए एक सद्विचार का अमल हम करेंगे, तो दुनिया में वह फैलने ही वाला है। उसे फैलने के लिए सिवाय उस पर अमल करने के, और कोई करने की जरूरत नहीं है। दुनिया उसको ग्रहण करने वाली है। यही देखिये न। अभी एक अमेरिकन-दंपति हमारे साथ दो दिन रह कर विचार लेकर गये। ऐसे मुफ्त के प्रचारक सद्विचार के लिए सदा मिल जाते हैं।

अब मध्ययुग में देखिये कि सभी तरफ संत ही संत पैदा हुए, दुनिया भर में संतों की फसल पैदा हुई। तो क्या इधर से उधर किसी ने प्रचार किया था? दुनिया भर में वह हवा चल पड़ी थी। आधुनिक जमाने में भी जापान, चीन, भारत, इटली आदि अनेक देशों में राष्ट्रीयता का उदय हुआ और देशाभिमान की भावना सर्वत्र फैली तो बिना साधनों के एक जमाने में ऐसी हवाएँ जब इधर से उधर जाती थीं, तो इस जमाने में वे और भी जल्दी जायेंगी। इस युग का एक वर्ष पुराने जमाने के पचास साल के बराबरी का है, इसलिए दुनिया में जमीन की मालकियत मिटाने की बात आकाश पुष्प तोड़ कर लाने जैसी नहीं है। यह काम आप और हम, सब कर सकते हैं, आवश्यकता मन में वृत्ति पैदा करने की है।

लोग पूछते हैं कि जमीन की या संपत्ति की निजी मालकियत मिटाने का काम हमारे पूर्वजों ने कभी किया नहीं, इतिहास में कभी हुआ नहीं, सो वह अब कैसे हो सकेगा? हम कहते हैं, जो बात इतिहास में नहीं बनी, वही बनाने के लिए तो आपका और हमारा जन्म हुआ है! हमारे जन्म के साथ हमारे लिए कोई नया कार्य नहीं होता, तो हमें भगवान् जन्म ही क्यों देता? पूर्वजों के पराक्रम के गीत गाना ही हमारा काम नहीं है; उसमें चार चाँद लगा देना भी हमारा काम है। बाप साढ़े पाँच फुट ऊँचा है और बच्चा तीन फुट ऊँचा। लेकिन जब वह बाप के कंधे पर बैठता है, तो बाप से ज्यादा दूर का देखता है। हमारे पूर्वज बड़े थे, लेकिन हम उनके कंधों पर बैठे हैं, इसलिए उनसे ज्यादा दूर देखने की हममें क्षमता है। पूर्वजों का धर्म-विचार और आगे बढ़ाना ही हमारा कार्य है। जो उसे आगे बढ़ने की जरूरत नहीं समझते, वे धर्म-विचार को नहीं समझते। जमाने के साथ यह विचार बढ़ता ही है। एक जमाने में द्रौपदी दाँव पर लगी थी और भीष्म, द्रोण, विदुर जैसे सर्वश्रेष्ठ ज्ञानी भी द्रौपदी पर धर्मराज की मालकियत है या नहीं, इस प्रश्न से विस्मित हो गये थे। आज एक बच्चा भी इसका जवाब सहज दे देता है। इसलिए हम पूर्वजों से छोटे हैं, ऐसा हम न समझें। उनके कन्धों पर बैठने से उनसे भी महान् हैं और इसलिए उनसे भी अधिक काम हम कर सकते हैं। दुनिया में शांति की स्थापना मालकियत के मिटाये बिना असंभव है। इसीलिए हम भूदान-यज्ञ का हरएक दानपत्र विश्व-शांति का वोट मानते हैं।

यह युगधर्म है। कालपुरुष की माँग है। हम सिर्फ उसके औजार हैं। व्यक्तिगत मालकियत यह जमाना नहीं चाहता, क्योंकि विज्ञान का ही वह तकाजा है। आत्मज्ञान ने "मैं" और "मेरा" छोड़ने का आदेश दिया। वेदांत के साथ आज विज्ञान भी यही कह रहा है। जब दोनों ओर से मालकियत पर प्रहार हो रहा है, तो वह टिक नहीं सकती। हम-आप छोटे हैं। लेकिन छोटों के ही हाथ से परमेश्वर बड़ा काम करना चाहता है। बंदरों ने राम का, ग्वालों ने कृष्ण का और मछुओं तथा बढ़इयों ने ईसा-मसीह का काम किया। जाल में मछली पकड़ते हुए एक मछुए ने जब ईसा को प्रणाम किया, तो ईसा ने कहा, "Come and follow me, I will make you fisher of men" (अब तक तू मछली ही पकड़ता था। लेकिन अब मैं तुम्हें मनुष्यों को पकड़ने की युक्ति बताऊँगा। आ जाओ, मेरे पीछे।) वह ईसा के पीछे गया। न उसने पत्नी का सोचा, न बच्चे का। वह कोई ज्ञानी तो नहीं था, बड़ा भी नहीं था। लेकिन ऐसों ही के जरिये ईसाई धर्म दुनिया में फैला।

हम बड़े नहीं हैं, यह हमारा भाग्य है; क्योंकि तब हम अहंकार से भरे हुए होते, 'ठोस' ही बने रहते, 'पोले' नहीं बनते। तब भगवान् भी हमारी 'बंसी' नहीं बजा सकते।

यहाँ लोग पूछते हैं, "कहाँ है रे तुम्हारा परमेश्वर?" मैं कहता हूँ, "आओ, मैं दिखाता हूँ। वह मेरे आगे-पीछे, अंदर-बाहर, ऊपर-नीचे, सर्वत्र है। वही तो बोल रहा और वही तो सुन रहा है!" अगर मैं अपनी जीभ काट कर यहाँ रख दूँ और आप अपना कान काट कर यहाँ रख दें, तो क्या वे परस्पर ही बोल और सुन सकेंगे? तो जो भीतर है, वही तो बोल और सुन रहा है। हम कोई चीज नहीं। वही अपना काम हमसे करवा रहा है। इसलिए भाइयो, श्रद्धा से उठो और मालकियत पटक दो, तो दुनिया में ऊँचे हो जाओगे और सारी दुनिया तुम्हारे जय-जयकार से भर जायेगी।

(अंडपट्टी, मदुरा, २०-१२-'५६)

तंत्रमुक्ति का पदार्थ-पाठ

(सिद्धराज ढड्ढा)

भूदान-समितियों के विसर्जन के बाद जिले-जिले के काम की जिम्मेवारी एक-एक व्यक्ति उठा लेगा। पर इसका यह मतलब नहीं है कि जिले में सारा काम यह एक शख्स ही करेगा, बल्कि अपेक्षा और आशा इससे उल्टी है। काम का जिम्मा किसी समिति वगैरा को न देने के पीछे कारण यह है कि इस तरह पाँच-सात आदमियों की समिति या संस्था को काम सौंप देने से जिम्मेदारी बंट जाती है और कोई भी एक व्यक्ति अपने को काम के लिए पूरा जिम्मेदार नहीं समझता। और कोई समझे भी, तो उसे समिति आदि के निर्णय का इन्तजार और अनुसरण करना पड़ता है। इससे काम तेजी से बढ़ नहीं पाता। दूसरे लोग भी समझते हैं कि यह काम तो अमुक समिति या संस्था का है, हमारा नहीं है। अब समिति आदि तंत्र खड़ा न करने का फैसला किया गया है। हाँ, काम आगे बढ़ता है या नहीं, इसकी चिन्ता करने वाला एक शख्स हर जिले में या क्षेत्र में होगा। इस तरह काम का संबन्ध चेतन से जोड़ने से काम सतत आगे बढ़ता रहेगा, ऐसी आशा है।

www.vinoba.in

पर काम इस तरह विकेन्द्रित कर देने का यह मतलब नहीं है कि एक से अधिक जिले के बीच या प्रान्तीय स्तर पर काम का समन्वय-न हो। इस तरह का समन्वय तो हर हालत में होना चाहिए। वह जरूरी है। फर्क इतना ही है कि अब काम की चिन्ता–इनीशियेटिव–केन्द्रित न रह कर वह जिले-जिले में बँट जायगी और सब लोग अपने-अपने क्षेत्र में आगे बढ़े, इसकी चिन्ता करते रहेंगे। आन्दोलन के काम का आर्थिक सम्बन्ध या नियन्त्रण ऊपर से नहीं होगा, पर सब जिला-सेवक व कार्यकर्ता एक-दूसरे से संपर्क बनाये रख कर काम का समन्वय करते रहेंगे, ऐसी अपेक्षा है। अखिल भारतीय स्तर पर तो सर्व-सेवा-संघ से संबंध जिले रखेंगे ही। इस तरह आन्दोलन का नियन्त्रण और इनीशियेटिव केन्द्रित न होते हुए भी सब लोग अपने सारे काम का समन्वय और सामंजस्य बिठायेंगे। सर्वोदय के लिए हम शासन-निरपेक्ष समाज-रचना आवश्यक मानते हैं, जहाँ पूरी व्यवस्था होते हुए भी नियन्त्रण या परावलम्बन नहीं होगा। हमें उसीका एक पदार्थ-पाठ इस नयी रचना में सीखना है।

आन्दोलन का संचालन या नियंत्रण प्रान्तीय आधार पर न होते हुए भी कई ऐसी बातें हैं, जिनमें आपसी सहयोग और समन्वय लाभदायी ही नहीं, बहुत हद तक आवश्यक भी होगा। मिसाल के लिए, प्रचार और प्रकाशन का काम। प्रान्तीय स्तर पर चलने वाली पद-यात्राओं, प्रान्त के बाहर के नेताओं के दौरे आदि का समन्वय भी प्रान्तीय दृष्टि से ठीक बिठाया जा सकता है। गाँवों में निर्माण काम का संयोजन तो प्रान्तीय आधार पर हो, यह सर्व-सेवा-संघ ने माना ही है। सूतांजलि-संग्रह की योजना भी प्रान्तीय आधार पर सोचना ठीक रहेगा। इस प्रकार मौजूदा तंत्र खतम हो जाने पर भी हम आवश्यक बातों में आन्दोलन का और सर्वोदय-कार्य का समन्वय और संयोजन करते रहें, यह जरूरी है।

क्रान्तियज्ञ में बाल-गोपालों की दिव्य लीलाएँ !

(विमलाबहन)

सामूहिक सघन पदयात्रा-समाप्ति के समारोह के लिए मुझे छिंदवाड़ा बुलाया गया था। हमारे एक नवयुवक अनुभवी साथी श्री 'मानव' जी पर पदयात्रा-संचालन का भार था। मानवजी ता० १९ को मुझे शिविर में ले गये। एक घासफूस से बनाये हुए मामूली शामियाने में पदयात्री बैठे थे। व्यासपीठ पर बैठते ही पदयात्रियों को देख कर मैं अवाक् रह गयी। आँखें मल कर फिर देखा और फिर हैरान हुई। क्योंकि मेरे सामने जो ९० पदयात्री बैठे थे, वे सबके सब बालक थे! १८ साल की उम्र से अधिक उम्र का शायद ही कोई हो। १२ साल की उम्र से १८ साल की उम्र तक के ९० बच्चे मेरे सामने शान से सीना तान कर बैठे थे!

दूसरी तरफ छिंदवाड़ा के विभिन्न हाईस्कूलों के लगभग ३०० छात्र एवं अध्यापक बैठे थे। अध्यापिकाएँ और लगभग ५० छात्राएँ भी बैठी थीं। मैंने मानवजी को, जो पदयात्रियों के अगुआ हैं और जिनकी भी उम्र मुश्किल से २५-२६ होगी, पूछा—"क्यों ये लड़के ही पदयात्रा में गये थे? इनके साथ कोई प्रौढ़ नागरिक नहीं थे? एक सप्ताह तक ये लड़के ही तहसील में घूमते रहे?" जवाब मिला—"हाँ, लड़के ही घूमते रहे! छिंदवाड़ा के नागरिकों में से कोई भी सहयोग देने या पदयात्रा के लिए तैयार नहीं थे। ९० लड़के लगभग ३० टोलियों में बँटे थे।"

इनमें हिन्दू, सिख, मुसलमान सभी धर्मों के एवं जातियों के बालक हैं। पदयात्रियों के टोली-नायकों ने अपने-अपने जो रोमहर्षक अनुभव सुनाये, वे सुनते समय कभी व्यथा से हृदय आक्रोश करता, कभी कौतुक से हृदय उछल पड़ता; कभी आनन्द से दिल रो उठता, तो कभी विषाद से दिल बैठ जाता।

एक १३ साल का सिख लड़का खड़ा हुआ। टोली-नायक था। हाफ-शर्ट और हाफ-पैण्ट पहने हुए, पगड़ी बाँधे वह बाल-वीर मेरे पास आकर खड़ा हुआ। चेहरा थकान से सूखा हुआ, आँखों में दुख की छाया थी। आवाज में रूठे हुए दिल का दर्द था। कहने लगा—"हम क्रांतिकार्य के लिए निकले लेकिन, हमको किसी ने टीका नहीं किया, माला तक नहीं पहनायी। गाँवों में दो दिन तक खाने को नहीं मिला। कभी दस, कभी चौदह मील हम चले। हमने साहित्य बेचा, भू-दान-गीत गाये, विचार समझाया। लेकिन संत विनोबा का काम ठीक से नहीं कर पाये, क्योंकि सात दिनों में हमें सात एकड़ ही जमीन मिली। इतना कह कर वह लड़का बिलख-बिलख कर रोने लगा।

मुझसे रहा नहीं गया। उठ कर उस लड़के को मैंने गले लगा लिया। उसके पीठ पर हाथ फेरते हुए कहा—"मेरे भाई, तुमने बहुत बड़ी सेवा की है। संत विनोबा तुमसे बहुत प्रसन्न होंगे। तुमको सात एकड़ जमीन कैसे मिली, किसने-किसने कैसे दी, यह मेरी समझ में नहीं आता है। तुम बहादुर हो। आज मैं तुमको माला पहना दूँगी, तिलक लगाऊँगी–अब तो हँसोगे।

लड़के की आँखों से आँसू बह रहे थे। कुरते के छोर से आँसू पोंछते ही मुस्करा उठा। विजेता की भाँति सभा की ओर गर्दन टेढ़ी करके उसने देखा। तालियों के गड़गड़ाहट से सभा ने अनुमोदन किया।

दूसरा एक मुसलमान लड़का खड़ा हुआ। उसकी टोली में दो हिंदू लड़के थे। जमीन लगभग १३ एकड़ मिली थी। अनुभव सुनाते हुए वह कहने लगा—"एक गाँव में गये। पटेल, पटवारी, कोटवार किसीने भी सहयोग नहीं दिया। टोली के भोजन की भी व्यवस्था नहीं की। पेट में चूहे कूद रहे थे। फिर भी आगे बढ़े। सभा की। उस गाँव में पटेल का आदेश था कि भूदान वालों को कोई मदद न करे। अर्थात् वहाँ भी खाने को नहीं मिला। आटा खरीद कर तीनों लड़कों ने गाँव के बाहर रसोई बनायी। १३-१४ साल के लड़के। रसोई बनाने का अभ्यास नहीं। तीन पत्थर रखे। जंगल से लकड़ी चीर कर लाये। चूल्हा जलाया। टिक्कड़ बने। हाथ जलते थे। चूल्हा सुलगाते समय धुएँ से जी घबड़ाता था, फिर भी टोली-नायक ने रसोई बना कर साथियों को खिलाया।

तीसरा बालवीर खड़ा हुआ। यह टोली-नायक हिंदू था और उसकी टोली में दो मुसलमान लड़के थे। टोली को ८० रुपयों का साधन-दान मिला था। "साम्ययोग" के पाँच ग्राहक टोली ने बनाये थे। जमीन २३ एकड़ मिली थी। टोली-नायक की उम्र थी १४ वर्ष। उसके साथी थे अंदाजन १५ साल की उम्र के। खादी का कुरता और खादी का ही पाजामा पहने हुए था। विशाल ललाट तथा बड़ी-बड़ी आँखों में से तीव्र बुद्धि का तेज झलक रहा था। मुस्कुराता हुआ, संत विनोबा का वह बाल-साथी बोल उठा—

"आखिर भू-दान का विचार समझने में क्या अड़चन है, मैं समझ नहीं सकता। देश में कोई गरीब न रहे, यही तो विनोबा चाहते हैं न? घर में हम सब प्रेम से रहते हैं। जो होगा वह बाँट कर लेते हैं, तो फिर जमीन बाँट लेना कौनसी कठिन बात है। मैं तो भाई, चाहता हूँ कि हर गाँव की जमीन बँट जाय। सब मिल कर रहें, मिल कर मेहनत करें। मुझे पदयात्रा में बहुत आनंद आया। काम तो मेरे साथियों ने किया। मेरे साथी बहुत अच्छे थे…!"

सभा के अध्यक्ष श्री त्रिवेदी की आँखें सजल हो उठीं। किसने इस लड़के को क्रांति का अर्थ समझाया? कितनी आसानी से उसने भूक्रांति का सार आत्मसात कर लिया। चौथा बाल-वीर उठा। यह तो निरा बच्चा था। उसकी उम्र बारह वर्ष से भी कम थी। मधुर स्वर में भू-दान-गीत गाकर उसने सभा को सद्गदित कर दिया। बाद में कहता क्या है—"सुन्दर-सुन्दर भू-दान गीत गाने से ही तो लोग समझ जाते थे। भाषण देने की भी जरूरत नही पड़ती थी!"

पाँचवें बाल-वीर की टोली को जंगलों में घूमना पड़ा था। एक दिन वह अपने साथियों को लेकर जंगल पार कर रहा था। उस समय तहसीलदार साहब उस जंगल में शिकार खेलने आये थे। लड़के जिस पगडंडी से आ रहे थे, उसके नजदीक गोली चली। धाँय! धाँय! आवाज आते ही लड़के चौंक उठे। शायद शेर हो। शायद घायल हुआ हो। यदि इधर ही शेर आये, तो क्या करें? किधर जायें? चारों ओर घना जंगल! पल भर के लिए तीनों लड़के बुत बन कर जहाँ के तहाँ एक-दूसरे से सट कर खड़े हुए। फिर उनमें से एक लड़का धीरे से बोल उठा—"देखो, भगवान् का काम करने हम निकले हैं। बस! उसका ही नाम अब लेना चाहिए। फिर जो होना हो सो होगा।" स्कूल में जो दैनिक प्रार्थना होती थी, वही तीनों लड़के आँखें बंद कर के, हाथ जोड़ कर गाने लगे। समस्त प्राणों को इकट्ठे कर के प्रार्थना की।

लड़का सभा से कहने लगा—"प्रार्थना गाते-गाते हम को भीतर से हिम्मत आयी। डर भाग गया।" एक-दूसरे का हाथ पकड़ कर वे आगे बढ़े। उस दिन से ईश्वर है और अपने नजदीक है, ऐसी श्रद्धा उनके मन में पैदा हुई।

हर टोली के किस्से लिखूँगी, तो एक खासा उपन्यास बन जायेगा। इसलिए सिर्फ और एक क्रांति-वीर की कहानी लिख कर यह समाप्त करूँगी।

एक बाल-वीर टोली-नायक कहने लगा—"हमको भी एक दिन खाना नहीं मिला। इस कदर भूख लगी थी कि पूछो मत। लेकिन गाँव के पटेल ने सबको बतलाया

www.vinoba.in

था कि भू-दान-वालों की मदद नहीं करनी है। गाँव पटेल से डरता था। जब चौबीस घंटे फाका करना पड़ा, तो दूसरे दिन चलते समय पैर लड़खड़ाने लगे। सोचा कि चलो, छिंदवाड़ा लौट चलें। भूख सहन करने की आदत तो है नहीं। आगे गाँव में यदि भोजन नहीं मिला, तो फिर लौटने की तैयारी की। इतने में विचार आया कि हम छिंदवाड़ा से नजदीक हैं, इसलिए संकट आते ही लौट रहे हैं, लौट सकते हैं। लेकिन जो हमारे साथी दूसरी टोलियों में गये हैं, उनको भोजन नहीं मिलेगा, तो क्या वे लौट सकेंगे? वे तो छिंदवाड़े से बहुत दूर हैं। वे नहीं लौट सकेंगे। फिर हमारा लौट जाना कैसे उचित होगा? नहीं—लौटना नहीं है। आगे बढ़ना चाहिए।"

लड़कों ने बिस्तर सिर पर रखे। छिंदवाड़ा की दिशा में बढ़ने वाले कदम छिंदवाड़ा की ओर पीठ फेर कर दूसरी दिशा में आगे बढ़ने लगे। टोली में १२ साल का एक सिख लड़का था। उसके पैरों में छाले पड़े थे। खून निकलता था। २–३ मील चलने के बाद पैर फिसल कर वह गिर पड़ा। कमर में चोट आयी। फिर भी जिद करके वह टोली के साथ आगे बढ़ा। टोली को ८ मील चलना था। सिख लड़का भूख के मारे चक्कर आकर दो बार गिरा। फिर भी साथियों के साथ आगे बढ़ता चला गया। टोली-नायक ने उस सिख लड़के को बुलाया। प्रसन्न-वदन, सुन्दर, सतेज लड़का। पैरों में कहाँ छाले पड़े, दिखाने लगा। हाथ में, कुहनी में कहाँ चोट आयी, गर्व के साथ दिखाने लगा।

मेरे मुँह से बरबस आह निकली। मेरी तरफ मुड़ कर सिख बालक कहने लगा, "कुछ नहीं बहनजी, मामूली चोटें हैं। दो-चार दिन में ठीक हो जायँगी। हम खेलते हैं, तो क्या गिरते नहीं? जब क्या चोट नहीं आती?" कह कर वह खिलखिला कर हँसने लगा। फिर से तालियाँ बजीं। 'शाबास!,' 'शाबास!!' की धूम मची।

तीन घंटे तक पदयात्रियों के अनुभव मैं सुन रही थी। सन्त विनोबा का क्रान्ति-कार्य अब बाल-गोपालों की लीला बन गया, यह देख कर किसको हर्ष नहीं होगा? ९० बालवीरों ने एक सप्ताह में २५० एकड़ जमीन के दानपत्र लाये। 'साम्ययोग' के २४ ग्राहक बनाये। २९०) का साधन-दान प्राप्त किया। १६०) के संपत्ति-दान प्राप्त किये। टोली-नायकों का आत्मनिवेदन समाप्त होने पर पदयात्रियों के लिए मालाएँ लायी गयीं। हर एक पदयात्री को मैंने अपने हाथसे माला पहनायी। तिलक लगाया, अक्षत लगायी। माला पहनते समय लड़के मारे खुशी के नाच उठते थे। अकड़ कर खड़े होते थे। मैं तिलक ठीक से लगा सकूँ, इसलिए झट से अपने बाल पीछे हटा देते थे। एक-एक की दिव्य बाल-लीला का वर्णन करने की क्षमता मुझमें नहीं है। क्या ही अच्छा होता कि मैं साहित्यिक होती या कवि!

स्त्री-समाज से दुनिया की आशाएँ !

इन दिनों समाज का जो काम पुरुष कर रहे हैं, वह उनकी ताकत के बाहर हो रहा है! दो-दो महायुद्ध हो गये हैं, तीसरे के लिए बारूद तैयार ही है, जरा चिनगारी लगने के लिए देर है। यह हालत इसलिए आयी कि परस्पर का एक-दूसरे पर विश्वास ही नहीं रहा। देश-प्रेम का अर्थ दूसरे 'देशों का द्वेष' किया जाने लगा और देशाभिमान गुण के बदले दोष बन गया। समाज में भी यही प्रक्रिया चल रही है। अभी भाषानुसारी प्रांत-रचना के समय हम देख चुके कि किस तरह पक्षभेद खड़े हो गये थे। तटस्थ बुद्धि से फैसला करने की बुद्धि ही नहीं रही। देहली-वालों पर अभी भी कुछ भरोसा है, इसलिए कुछ फैसला हो जाता है। हिंदुस्तान पर यह कृपा ही है। इस तरह प्रांताभिमान भी दोष बन गया। पंथ, संप्रदाय जाति, भाषा, धर्म आदि अभिमानों के बोझ मनुष्य सिर पर उठाता जाय, तो उसके सिर की आखिर क्या स्थिति होगी?

पुरुषों की इस दुर्गति के समय स्त्रियाँ अगर सामने आयें और दुनिया को अहिंसा का रास्ता दिखायें, तो समस्या सुलझ सकती है। इसके लिए जरूरी है कि स्त्रियाँ पुरुषों की कैद में से मुक्त हों, समाज के काम में वे ज्यादा से ज्यादा हिस्सा लें और तालीम की बागडोर भी उनके हाथ में रहे। भूदान में ऐसे अनेक अनुभव आये, जिसमें हमने देखा कि पुत्र को माँ ने, पति को पत्नी ने और भाई को बहन ने प्रेरित किया है। स्त्रियाँ जब समाज के काम में आती हैं, तो उनके साथ दयाबुद्धि भी आ जाती है।

(तिरुपुट्टइपुदुर, कोइंबतूर, १८-९)

निधि-मुक्ति का वास्तविक अर्थ

(द्वारको सुंदरानी)

सर्व-सेवा-संघ के पलनी-प्रस्ताव पर कार्यकर्ताओं में काफी चर्चा है। "तंत्रमुक्त होकर अथवा संचित निधि का आधार छोड़ कर कैसे कार्य किया जाय," इसी आधार पर सबका चिंतन चल रहा है। निश्चय ही तंत्रमुक्ति की ओर उठाया गया यह कदम हमें क्रांति की ओर ले जायगा, बशर्ते कि हम तंत्रमुक्ति का सही अर्थ समझें। पर अर्थमुक्ति का भी रहस्य क्या सचमुच हमने समझा है?

प्रवृत्ति के दो पहलू होते हैं—एक विचार और दूसरा आचार। इन दोनों में कहीं भी असंगति नहीं होनी चाहिए। अगर केवल ऊँचे-ऊँचे आदर्शों की कल्पना करते रहें और सैद्धांतिक बातें करते रहें, तो उसका तब तक कोई अर्थ नहीं, जब तक कि वे कल्पनाएँ और वे सिद्धांत प्रत्यक्ष आचार में न उतरे हों! बिना अपने जीवन की साधना और अनुभव के, कही गयी बातों का मौलिक महत्त्व नहीं होता।

यह कार्य तो नव-समाज-निर्माण का कार्य है। इस कार्य में जितना महत्त्व विचार-शक्ति का है, उससे कहीं अधिक आचार-शक्ति का महत्त्व है। इन शक्तियों का प्रवर्तन न केवल वैयक्तिक जीवन में, अपितु समष्टि के जीवन में होगा, तभी हमारी कल्पना चरितार्थ हो सकेगी। तंत्रमुक्ति की प्रक्रिया के साथ यह अत्यन्त आवश्यक है कि हमारे कार्यकर्ता समाज के नवसृजन में अपनी बुद्धि-शक्ति का, चिंतन-शक्ति का विकास करें। विकास की इस प्रक्रिया में साहित्य से, साधकों से, चिंतकों से तथा साथियों से सहायता मिलेगी ही, पर मुख्यत: आत्मचिंतन से हम अधिक लाभ उठा सकते हैं। विनोबाजी ने हमारे सामने समाज के विकसित रूप का चित्र रख कर ध्येय साफ कर दिया है। इस ध्येय के आधार पर अपने क्षेत्र की परिस्थितियों को एवं अपनी कार्य-शक्ति को देख कर आगे बढ़ने की योजना हमें तैयार करनी है।

संचित निधि का आधार छोड़ने में क्या रहस्य है, यह हमें अच्छी तरहसे समझ लेना है। आज ऐसा समझा जा रहा कि निधि-मुक्ति का अर्थ पैसे से मुक्ति नहीं है और हम संपत्तिदान, सूतांजलि, अन्नदान आदि साधनों से पैसा प्राप्त करके अपना जीवन चला सकते हैं। पर मेरी नम्र राय यह है कि आज की परिस्थिति में हम भले ही इस नीति को मान लें कि हम उपरोक्त साधनों से पैसे ले सकते हैं, पर हमारा अंतिम लक्ष्य कांचन-मुक्ति का ही होना चाहिए—अर्थात् श्रमशक्ति के आधार पर ही हमें अपने आपको परखना होगा। श्रमजीवन जीकर ही क्रांति के इस महायज्ञ में अपना भाग देना होगा। आज हम चौराहे पर खड़े हैं, यहाँ से हमें नया मोड़ लेना है। हम अपने आगे के पथ को अच्छी तरह समझ लें; अपनी दिशा स्पष्ट कर लें!

आज हमारी जो आवश्यकताएँ हैं, उनमें से सबकी सब नहीं, तो फिलहाल कुछ आवश्यकताएँ हमें खुद अपने श्रम से पूरी करनी चाहिए। इससे हमारे जीवन में नया उत्साह ही नहीं आयेगा, अपितु हमारी शक्ति का विकास भी होगा। क्योंकि जब हम स्वावलंबी श्रमनिष्ठ समाज का निर्माण करना चाहते हैं, तो उस स्वावलंबन का स्थान और शरीर-श्रम की निष्ठा स्वयं हमारे जीवन में भी होनी चाहिए। फिर भी अगर आज की स्थिति में हम पूर्ण कांचनमुक्त, स्वावलंबी नहीं बन सकते हैं, तो श्रमदान भी ले सकते हैं। परंतु अगर किसी दाता से या सूतांजलि से हम पैसे प्राप्त कर लेते हैं, तो हमारे कार्य की प्रगति कहाँ हुई? आखिर हमारे जीवन पर पैसा तो छाया ही रहा। हमारी जीवन-निष्ठा में क्या अंतर आया? आखिर हमने पैसे के मूल्य को फिर भी उसी तरह बनाये रखा। गांधीनिधि से पैसा प्राप्त करना ही कौनसी बुरी बात थी? सचमुच में तो हमें अर्थनिष्ठा के स्थान पर श्रमनिष्ठा के मूल्य को स्थापित करना है। सूतांजलि के सूत से एक बुनकर दाता अपने श्रम द्वारा अगर खादी बुन देता है, तो उस खादी के पहनने से हमारी निष्ठा को अवश्य चेतना मिलेगी, क्योंकि उस खादी के साथ उस बुनकर का श्रम हमारे हृदय को स्पर्श करता रहेगा। इसी तरह कोई भूमि-आदाता, खेतिहर मजदूर अपने श्रम से उत्पन्न अन्न देता है, तो उसे स्वीकार करने के साथ ही हमारे चित्त पर श्रम की छाप भी लगती है। अर्थात् अगर हम दाता के श्रम से उत्पादित वस्तुओं को स्वीकार करेंगे, तो जनता-जनार्दन के साथ हमारे जीवन का सीधा संबंध बढ़ेगा, और कांचन के कुचक्र से या तंत्र के भार से हम सही अर्थ में मुक्त हो सकेंगे।

आत्मचिंतन से जहाँ विचार का बल बढ़ेगा, वहाँ श्रम-जीवन से हमारे आचार का बल बढ़ेगा। जैसे-जैसे आचार के साथ विचारों का समन्वय होता जायेगा, वैसे-वैसे सर्वोदय की कल्पना मूर्तिमंत होती जायेगी। इसी तरह अर्थमुक्ति, तंत्रमुक्ति या निधि का आधार छोड़ने की भावना सार्थक सिद्ध होगी।

www.vinoba.in

भूदान-यज्ञ

४ जनवरी सन् १९५७

ग्रामदान के साध्य !

(वीनोबा)

ग्रामदान धर्म-वीचार, अर्थ-वीचार और वीज्ञान-वीचार; अीन तीनों की कसौटी पर खरा अुतरता है।

धर्म कहता है की कीसी अेक को भी दुःख हो, तो अुसमें सबको हीस्सा लेना चाहीअे, कीसी अेक को फाका न करने दें, खुद कम खाकर अुसे खीलायें। समाज में जलबींदुवत् समान प्रेम होना चाहीअे, जैसे कुअें में से बालटी भर पानी लेते ही शेष जलबींदु अुसी क्षण अुसे पूरा कर देते हैं। यही परमेश्वर का रूप है, अीसीको प्रेम भी कहते हैं और करुणा भी। ग्रामदान के काम में करुणा प्रत्यक्ष प्रकट होती है। अीसमें दूसरों के लीअे फाका करने का मौका आता है, जैसे मां पर बच्चे के लीअे फाका करने का मौका आता है। गरीब व्यक्ती जब अकेला रहता है, तो आम, दूध आदी का अुपभोग खुद लेता है; लेकीन घर में बच्चे आते ही अुसी आमदनी के रहते, बच्चों के लीअे अपना अुपभोग छोड़ देता है। यही त्याग करने का मौका ग्रामदान प्रस्तुत करता है। यह अीसका धर्म-वीचार है।

जमीन के छोटे-छोटे टुकड़े आज बहुत हैं। जमीन की वीषमता भी बहुत है। अीससे अर्थोत्पादन ठीक तरह से नहीं हो सकता। जीस समाज में समानता, सहयोग आदी होंगे, वहीं अर्थोत्पत्ती बढ़ेगी। कीसी खेत में कुछ टीले और कुछ गढ़े भी हों, तो वहां फसल अच्छी नहीं आ सकती, अतः जमीन को समतल बनाना होता है। अीसी तरह हमें समानता लानी है। अर्थात् यह पांच अुंगलीयों की-सी समानता होगी। लेकीन अीन पांचों अुंगलीयों को अीकट्ठा होना पड़ता है, तभी काम होता है। अुसी तरह सहयोग और सहजीवन से हम काम करते हैं, तो समाज में आर्थीक संपन्नता बढती है। कीसान, बुनकर, चमार, तेली; अीनकी चीजें परस्पर के काम न आयें, तो अुससे गांव का क्या हीत होगा ? लेकीन आज अैसा चल रहा है, क्योंकी "यह मेरा गांव है," अैसी भावना नहीं है, जो की हमें अब बनानी है। गांव और घर की भी अुन्नती तभी होगी, जब सब परस्पर को अेक परीवार मानेंगे। यह अीसका अर्थशास्त्रीय वीचार है।

वीज्ञान-युग में अगर हम मील-जुल कर काम नहीं करते हैं, तो खत्म हो जाते हैं। आज कोअी भी दूसरे की मदद के बीना टीक नहीं सकता। अगर जीवीत रहना है, तो राष्ट्रों को, प्रांतों को, ग्रामों को; सबको मीलजुल कर काम करना होगा। ग्रामदान अीसी वीचार की प्रेरणा देता है। यह अीसका वीज्ञान-वीचार है। वीज्ञान शक्ती की, अर्थशास्त्र संपत्ती की और धर्म, शुद्धी की शोध करता है और ये तीनों कार्य ग्रामदान में सधते हैं।

(कोडुवीलारप, मदुरा, १८-१२)

गाँव-गाँव को निमंत्रण !

(बाबा राघवदास)

भूदान-यज्ञ-समितियों के विघटन के बाद गाँव के वृद्ध, प्रधान, पंच, हितचिंतक तथा ग्राम-सेवक इस कार्य को अपना कर भूदानयज्ञ सम्पन्न करेंगे, यह सर्वोदय की प्रक्रिया में एक महत्त्वपूर्ण प्रयोग है।

जब तक घड़ा रहता है, तब तक उसके अन्दर स्थित आकाश 'घटाकाश' कहलाता है, पर उसके फूट जाने पर वह आकाश में विलीन हो जाता है। इस घड़े की उपाधि से वह आकाश मर्यादित हुआ था। अब इसके फूट जाने पर वह व्यापक हो गया। इसी प्रकार समितियाँ बन जाने के कारण जो भूदान-यज्ञ मर्यादित था, वह समितियाँ टूट जाने से अब व्यापक हो गया है।

जिस देश में लाखों गाँव हों और एक करोड़ परिवारों के लिए आवश्यक जमीन की समस्या हल करनी हो, तो उसके लिए मर्यादित संगठन काम नहीं दे सकता। इस दृष्टि से इस प्रयोग को देखा जाय। हमें पूरा भरोसा है कि देश की सभी गैर-सरकारी, अर्ध-सरकारी संस्थाएँ, चाहे वे किसी जन-सेवा-कार्य के लिए स्थापित की गयी हों, बेजमीन, बेरोजगार परिवारों से सहानुभूति रखेंगी और सबके सब अपने-अपने क्षेत्र में काम में लग कर, जैसे दिवाली के दिन सभी घरों में साथ-साथ दीपक जलाया जाता है, वैसे १९५७ में किसी दिन यह घोषणा करने का महत्त्वपूर्ण कार्य करने के समर्थ हों कि हमारे गाँव में बिना जमीन, बिना रोजगार अब कोई नहीं है।

अगर राजनैतिक आजादी निश्चित दिन तथा समय पर घोषित हो सकती है, जिससे कि एक बलशाली राष्ट्र का सम्बन्ध था, तो क्या आर्थिक आजादी का यह पावन कार्य हम ठीक समय पर न करेंगे? संकल्प में शक्ति होती है। भगवान् अपने भक्तों की लाज रखते हैं। राजनैतिक गुलामी की तरह आर्थिक गुलामी का यह अभिशाप जितनी जल्द दूर हो, उससे हममें संतोष भी बढ़ेगा एवं तेज भी।

१९५७ आ रहा है। एक मित्र ने इसको 'सत् आवन' के रूप में हमारे सामने रखा है, जो कई अर्थों में सत्य मालूम होता है। १९५७ में भूमि-समस्या हल करने का संकल्प राष्ट्र ने किया है। इस आंदोलन को सभी विचारों की संस्थाओं का सहयोग एवं आशीर्वाद प्राप्त है, यह सत्-आवन का एक सबसे बड़ा प्रमाण है!

अणुयुग में अणुबम सबसे बलशाली बताया जाता है, पर सामूहिक सेवकत्व के आधार पर छोटे-छोटे कार्यकर्ता, छोटे-छोटे चैतन्य अणु अपनी आत्मसाधना से कितनी बड़ी क्रांति कर सकते हैं, इसकी झाँकी हमें सामूहिक सेवकत्व के रूप में हो रही है। इसी तरह हमारे गाँव-समूह भी अपने सामूहिक सेवकत्व के आधार पर अपने-अपने गाँव के बेजमीनों की समस्या अपनी साधना तथा लगन से हल कर सकते हैं। इस प्रकार यह राजसूय-यज्ञ के बदले प्रजासूय-यज्ञ है। अर्थात् प्रजा द्वारा प्रेरित, प्रजा द्वारा संचालित तथा प्रजा की जीवन-मरण की समस्या हल करने के लिए यह है।

समितियों का विसर्जन करने का संकल्प तो ऐसा है, जैसे श्री संत तुकाराम ने कहा था कि मैंने अपना मरना अपनी आँखों से देखा और वह एक महान् उत्सव है। अपनी आँखों के सामने अपने कार्य का विसर्जन करना, यह भी एक महोत्सव ही तो है।

जैसे भगवान् बुद्धदेव ने अपने भिक्षुओं को, श्री आचार्य शंकर ने संन्यासियों को, श्री समर्थ रामदास ने अपने महन्तों को शून्य होने के लिए आदेश दिये थे, वैसे यह आदेश है। संन्यासियों में जैसे उस समय गिरि, पुरी आदि क्षेत्र-सेवक बताये गये थे, वैसे ही ये जिला-सेवक हैं।

संपत्ति की तरह संस्था का भी मोह दुखदायी होता है। पर अहंभाव से काम बिगड़ता है और उसके त्याग करने पर बिगड़ा हुआ कार्य बनता है। यह अहं मनुष्य को व्यापक शक्ति की सहायता से ही रोकता है।

तो,जब हम सर्वस्व दान-चाहते हैं, हमें भी अपने को शून्य बनाना होगा। उसके अभाव में सर्वस्वदान की अपेक्षा कैसे की जायगी? पाने के लिए पात्रता होनी चाहिए और वह तो शून्य बनने में ही है!

बापू ने 'सेवक की प्रार्थना' में भगवान् को 'नम्रता के सम्राट' संबोधन कर हमें स्मरण दिलाया है कि जिस प्रकार कच्चा धागा फूलों को एकत्रित रखने में सहायक होता है, उसी तरह मानवों के अनेक समाजों को सुसंगठित बनाये रखने के लिए विलीनीकरण एक आवश्यक कार्यक्रम था। अब सभी को आमंत्रण है!

www.vinoba.in

सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव और हमारा लक्ष्य

(शंकरराव देव)

भूदान के काम के बीच हम जो एक काम में लग गये थे, उसको "कुलाल-चक्र" का न्याय लागू होता है। हर एक सेवक की अपनी एक पिछली जिंदगी होती है, जैसे कुम्हार का काम समाप्त होने के बाद भी उसके चक्र की गति कुछ समय तक शुरू रहती है! लेकिन अब हम उम्मीद करते हैं कि अगले तीन-चार मास में हम उससे मुक्त हो जायेंगे और योग हो, तो जैसे विनोबाजी ने अपने बारे में कहा, वैसे ही हम निरुपाधिक रूप में देश की और भूदान-यज्ञ की सेवा करने के लिए तैयार हो जायेंगे।

चुनाव-संबंधी सर्व-सेवा-संघ के प्रस्ताव का जो आधारभूत सिद्धांत है, उसके बारे में चंद शब्द यहाँ कहूँगा। सर्व-सेवा-संघ जनता में समाजिक और आर्थिक तब्दिलियाँ लाने के लिए और एक नये सर्वोदय-समाज की स्थापना करने के लिए सत्ता को साधन नहीं मानता। केवल रचनात्मक कार्य से पैदा की हुई जन-शक्ति के द्वारा ही हम व्यक्ति और समाज के मानस में परिवर्तन करेंगे, तो ही हम सर्वोदय या शासन-मुक्त समाज की स्थापना करने में सफल होंगे, ऐसी संघ की श्रद्धा है। शुद्ध लोकशाही स्थापित करने का यही एक सीधा और सरल मार्ग है, ऐसी भी उसकी मान्यता है। आज पश्चिम की जिस लोकशाही को हमने स्वीकार किया है, उसका सैद्धांतिक आधार सदोष है। इसलिए पक्ष, चुनाव आदि जो उसका व्यावहारिक रूप है, वह भी अनिवार्य रूप से सदोष ही है। पश्चिम की आज की जो लोकशाही है, वह सत्ता के जरिये ही लोककल्याण सिद्ध करना शाश्वत सिद्धांत मानती है। जनता का, जनता द्वारा, जनता के लिए चलाया हुआ राज्य, यह लोकशाही की व्याख्या मशहूर है। इस व्याख्या में राज्य याने सत्ता गृहित वस्तु है। तो भी पक्ष या पक्ष-पद्धति का जिक्र शुरू में नहीं है, यह ध्यान में लेने जैसी चीज है। प्राचीन लोकशाही में पक्ष का अस्तित्व नहीं था। यूरोप में अर्वाचीन युग में जब लोकशाही का "पूंजीवादी लोकशाही" के रूप में नया अवतार हुआ, तब उसके साथ-साथ ही पक्ष-पद्धति का जन्म हुआ। अतः पूंजीवाद के दोष से जब लोकशाही मुक्त हो जायगी, तभी पक्ष-पद्धति भी नष्ट हो जायगी और लोकशाही अपने शुद्ध स्वरूप में प्रकट होगी। लेकिन आज तो पक्ष-पद्धति लोकशाही का अविभाज्य अंग मानी जाती है और लोकशाही शुद्ध स्वरूप में चलाने के लिए कम-से-कम दो पक्षों की जरूरत समझी जाती है। एक पक्ष सत्ताधारी और दूसरा पक्ष सत्ता-विरोधी, क्योंकि शील-भ्रष्ट करना सत्ता का स्वाभाविक धर्म है, इसलिए सत्ता-विरोधी पक्ष रहेगा, तो वह सत्ताधारी पक्ष को सन्मार्ग पर ला सकेगा, ऐसा सर्वसाधारण तौर पर माना जाता है। इसी कारण इंग्लैंड में जो विरोधी पक्ष होता है, वह भी "हिज मॅजेस्टीज अपोजिशन"-बादशाह का-कहलाता है और विरोधी पक्ष का जो नेता होता है, उसको सरकारी खजाने से वेतन मिलता है। अर्थात् जो सत्ताधारी पक्ष होता है, वही पैसे देकर अपने विरोध में एक पक्ष रखता है, क्योंकि दोनों ही "हिज मॅजेस्टी" में याने "सत्ता" में मानते हैं। इसी कारण विरोधी पक्ष सत्तारूढ़ होता है, तो भी "हिज मॅजेस्टी" को कोई धक्का नहीं लगता। इस प्रकार यूरोपीय लोकशाही में जो विरोधी पक्ष है, वह सही माने में सत्ता-विरोधी या सत्ता का विसर्जन करने के लिए नहीं है, वह केवल सत्ताधारी पक्ष का विरोध करने के लिए है और खुद सत्ताकांक्षी है। सत्ता हासिल होने तक सत्ताधारी पक्ष पर अंकुश रख कर उसको सन्मार्ग पर रखना, यही उसका एकमेव काम है। इसी तरह दोनों पक्षों के लिए "हिज मॅजेस्टी," याने सत्ता (पॉवर) देवता है और दोनों उसकी उपासना करते हैं।

लेकिन सर्व-सेवा-संघ शासन-मुक्ति में मानता है और शासन-मुक्त समाज ही सच्चे मानी में लोकशाही समाज हो सकता है, यह उसकी धारणा है। जन-शक्ति के जरिये वह आज सच्ची लोकशाही निर्माण करना चाहता है। इस बात में हम गांधीजी से क्रांति-मार्ग पर एक कदम आगे बढ़े हैं! व्यक्ति कितना ही बड़ा हो, विभूति हो, तो भी उसके विचार और आचार पर उसके समय का कुछ-न-कुछ असर जरूर रहता है। काल-निरपेक्ष विचार और आचार केवल एक कल्पना-मात्र है। आज की जो लोकशाही है, उसमें सत्ताधारियों पर काबू रखने की आवश्यकता गांधीजी भी मानते थे, लेकिन जिस बल से वे सत्ताधारियों को कुश में रखना चाहते थे, वह राजनैतिक बल था। केवल एक सत्ता-विरोधी पक्ष सत्ताधारी पक्ष को सही रास्ते पर रखने में पर्याप्त होगा, ऐसा वे नहीं मानते थे। विधायक काम के जरिये जो नैतिक बल पैदा होगा, वही सत्ताधारी पक्ष को काबू में रखने में सफल होगा, ऐसा वे मानते थे। दिसंबर १९४७ में देहली में विधायक कार्यकर्ताओं के साथ उनकी जो चर्चा हुई, उसका निचोड़ यही था। उनकी लोक-सेवक-संघ की जो कल्पना थी, उसमें सत्ता या राज्य (गवर्नमेंट) को गृहित समझ करके ही उसका रचनात्मक कार्य के द्वारा 'कंट्रोल' करने की योजना थी। लोक-सेवक-संघ का जो विधान उन्होंने बनाया था उसमें, ग्राम-सेवकों के भिन्न-भिन्न कामों की जो फेहरिश्त दी थी, उसमें मतदाताओं के रजिस्टर में, हरएक गाँव के प्रौढ़ स्त्री-पुरुष का नाम दर्ज हुआ है या नहीं, यह देखना भी एक महत्त्व का काम था, लोक-सेवक-संघ के अनुसार ग्रामसेवक मतदाता का पथ-प्रदर्शक, मित्र और गुरु था।

परंतु भूदान-यज्ञ में जनशक्ति के सृजन या निर्माण का हम लोगों को ऐसा दर्शन हुआ है कि हम केवल नियंत्रक-"करेक्टिव" अवस्था से सृजनात्मक याने "क्रियेटिव" अवस्था को पहुँच गये हैं। आज की मिलावटी लोकशाही को नियंत्रण में रखने के बजाय हम जनशक्ति के जरिये शुद्ध लोकशाही का निर्माण करेंगे, जिसको गांधीजी अहिंसात्मक लोकशाही (नॉन्‌वायलंट डेमोक्रसी) कहते थे। जनशक्ति को किस तरह से पैदा करना, यह बात हमको गांधीजी ने ही पहली दफा बतलायी। विधायक कार्यक्रम को उन्होंने ही पहले हमारे सामने रखा और आजादी हासिल करने में हमने उसका काफी उपयोग किया। आजादी की लड़ाई हमने अहिंसा से ही जीती। लेकिन आज भूदान-यज्ञ ने जनशक्ति का जो नया दर्शन हमको करवाया है, वह उस समय नहीं हो सका था। इसलिए आजादी की लड़ाई के बाद हम सत्ता हाथ में लेंगे, लेकिन उसको विरोधी पक्ष अर्थात् राजनैतिक पक्ष की जगह हम जनशक्ति से याने नैतिक बल से काबू में रखने की कोशिश करेंगे, ऐसा खयाल करने तक ही हमारी प्रगति गांधीजी के जमाने में हुई थी। लेकिन सत्ता को काबू में रख कर उसको नैतिक बल से शुद्ध करने की हम कितनी ही कोशिश करें, तो भी आखिर सत्ता तो शेष रहती ही है। और हमारा तो ध्येय है, शासन-मुक्ति तथा सच्ची समता। भूदान-यज्ञ में जनशक्ति का जो दर्शन हुआ है, उससे हमारे में यह श्रद्धा पैदा हुई है कि हम उसके शुद्ध स्वरूप में भी सत्ता का उपयोग करना छोड़ देंगे और जनशक्ति के द्वारा याने अहिंसात्मक बल से सीधे शुद्ध लोकशाही का ही निर्माण करेंगे। शासन-मुक्ति का और सच्ची समता का यही एक मार्ग दीखता है। लेकिन आजकल "अहिंसात्मक मार्ग से" या "सत्याग्रह से" आदि शब्दों के उपयोग से भी गलतफहमी फैलने का भय रहता है, क्योंकि इन शब्दों का भी कुछ अपना पूर्व-इतिहास है। अहिंसात्मक प्रतिकार

खतरा बुरे राज्य से नहीं, अच्छे राज्य से!

दुर्जन राज्यकर्ताओं के खराब राज्य के कारण हमें उतना दुःख नहीं होता है, जितना सज्जन राज्यकर्ता के अच्छे राज्य से होता है! औरंगजेब जैसों की सत्ता से हमें उतनी चिंता नहीं है, न उसमें डरने की उतनी बात है। लेकिन अकबर जैसों के राज्य से डरने की बात जरूर है, क्योंकि वह अच्छा राजा था और इसलिए राज्य-सत्ता को ही प्रेस्टिज (प्रतिष्ठा) मिलती थी! हम अच्छे राज्यकर्ताओं से इसलिए ज्यादा डरते हैं कि जहाँ अच्छे राज्य चलते हैं, वहाँ लोगों को शासन में से मुक्त होने की बात ही सूझती नहीं। लेकिन आज अगर अच्छा राज्य है, तो कल खराब राज्य भी तो आ सकता है। इसलिए जब तक सब लोग अपनी ताकत से, स्वावलंबन से इनसे मुक्ति नहीं पाते हैं, तब तक खतरा टलेगा नहीं।

(पेरय्युर, मदुरा, २४-१२) —विनोबा

www.vinoba.in

असहयोग, सविनय कानून-भंग, जेल में जाना, यही इन शब्दों का हम खास अर्थ समझते हैं। इसी कारण बहुत से लोग १९५७ साल के बाद के समय का इंतजार कर रहे हैं! वे समझते हैं कि १९५७ में भू-क्रांति न होगी, तो विनोबाजी सत्याग्रह शुरू करेंगे, अर्थात् हम लोगों को अहिंसात्मक प्रतिकार करके जेल में जाने के लिए आवाहन करेंगे! विनोबाजी आज भी सत्याग्रह ही कर रहे हैं, यह चीज उनके ध्यान में नहीं आती, क्योंकि जिसको विनोबाजी सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह कहते हैं, उसे कार्यकर्ता और जनता अच्छी तरह से समझे नहीं हैं।

"करेंगे या मरेंगे," यह जो हमारा नारा है, उसको भी जरा दुरुस्त करने की जरूरत है। करना या मरना, ये दो चीजें नहीं समझना चाहिए। एक अभी करेगा और दूसरा समय आयेगा, तब मरेगा, यह इसका अर्थ नहीं है। एक ही आदमी करते-करते मरेगा, यह इसके माने हैं। सौम्य, सौम्यतर और सौम्यतम सत्याग्रह के माने यही है। जब हमने यह खबर सुनी कि एक दिन प्रातःकाल विनोबाजी पदयात्रा को चले, लेकिन कुछ कदम आगे बढ़ने के बाद वे रास्ते में ही बैठ गये, तो हमको आश्चर्य नहीं हुआ! इसका अर्थ यह हुआ कि वे चाहते थे कि आगे चलें, लेकिन शरीर ने इन्कार किया। संभव है, वहाँ उनकी मृत्यु भी हो जाती। वह सौम्यतम सत्याग्रह का एक आदर्श, नमूना हमारे सामने आ जाता। "करते-करते ही मर जाना" (व्हाइल डुइंग डाय) एक दिन विनोबाजी के बारे में ऐसा ही हुआ, यह हम सुनेंगे, तो हमको ताज्जुब नहीं होगा। हाँ, ऐसा नहीं सुनेंगे, तो ही आश्चर्य होगा!

सारांश, इस प्रस्ताव के बारे में हमको जो कहना था, वह यही कि भूदान के गत पाँच साल के आंदोलन में हमको जन-शक्ति का जो दर्शन हुआ है, उसके आधार पर सत्ता को नियंत्रित करना छोड़ कर हम एक शुद्ध लोकशाही का निर्माण करने का ही प्रयास करेंगे। अब हमारे कोष में से "करेक्टिव" अर्थात् "नियंत्रक" शब्द चला गया है, और "क्रियेटिव" याने "निर्माता" शब्द ही रहा है।†

†सर्व-सेवा-संघ, पलनी की बैठक में किये गये भाषण से, २१-११-५६।

सच्चे मूल्यों की कसौटी

(दादा धर्माधिकारी)

[ता० ५-१०-५६ का लोकभारती, सणोसरा का भाषण]

मेरे एक मित्र ने एक बार तीखी भाषा में कहा था कि "आपके सर्वोदयवाद के जमाने के साथ संसार में शूद्र-संस्कृति का आरम्भ होता है! आपका पूरा बस नहीं चलता, अन्यथा आप मनुष्य के मस्तिष्क का ऑपरेशन कराके उसे निकलवा ही लें।" क्रिया करते-करते ऐसा एक समय आता है, जब मनुष्य थोड़ा विचार-विमुख बन जाता है। ऐसी अवस्था आने पर विचार-जागृति की आवश्यकता पैदा होती है। आज हमारे देश में और विश्व में सांस्कृतिक समन्वय की जरूरत है। साबरमती में इसकी चर्चा करते समय मैंने यह भी कहा था कि सांस्कृतिक समन्वय के साथ ही साम्प्रदायिकता का निराकरण भी आवश्यक है। ऐसी बात मैं सब कहीं नहीं कहता, फिर भी इतनी बात कहूँगा कि साम्प्रदायिक समन्वय होने पर ही सार्वभौम विचार प्रस्थापित हो सकता है।

विचार का लक्ष्य संवाद है। अभी यहाँ जो भजन गाया गया, उसमें हमने देखा कि एक तरफ तम्बूरा था, दूसरी तरफ तबले थे और दूसरे दो व्यक्ति गा रहे थे। उनमें तम्बूरे के, तबलों के और गायकों के स्वर अलग-अलग थे, फिर भी सबके एक-दूसरे के साथ चलने से जो मेल उत्पन्न हुआ, उसे हमने संगीत कहा। संगीत का अर्थ है, सहगीत—समानता और साथ। भगवद्गीता में कहा है कि वेदानां सामवेदोऽस्मि। वेदों में मैं सामवेद हूँ। सामवेद संगीत है। उसमें समानता, संवादिता और एकता है। मनुष्य के जीवन में विचार की संवादिता होनी चाहिए और विचार के जो सम्प्रदाय हैं, उनमें समन्वय होना चाहिए। विचार में भिन्नता हो सकती है, विरोध नहीं। विविध विचार एक-दूसरे के पोषक, एक-दूसरे के अनुकूल हों। जहाँ विरोध दिखे, वहाँ बुद्धि से उसका निराकरण करना चाहिए। रामकृष्ण परमहंस देव ने यह बात अपने ढंग से कही, गांधीजी ने सर्व-धर्म-समन्वय के नाम से कही और आज विनोबा प्रभावशाली रीति से कहते हैं कि सब विचार अपने आप में परिपूर्ण हैं। बौद्ध, जैन आदि सबके समन्वय से जो विचार बना, वह भी परिपूर्ण विचार है। अलग-अलग वे सब पूर्ण हैं, किन्तु समन्वय से जो संवादिता उत्पन्न होती है, वही विचार की परिपूर्णता है।

बुद्धि खण्डन की नहीं, बल्कि दूसरों को समझने की होनी चाहिए। यदि भूल को निर्मूल करने में समर्थ न हों, तो हम सामने वाले के विचार को शुद्ध नहीं कर सकते। भूल को सुधारने की कोशिश में से संवादिता उत्पन्न होती है। इस वैज्ञानिक संयोग की भूमिका यह होती है कि मेरे और आपके आचार में समानता नहीं होती, परन्तु मेरे और आपके विचार एक-दूसरे के पोषक-सहायक बन सकते हैं। विचार का समन्वय आचरण-निरपेक्ष होता है। बुद्ध, कृष्ण, मुहम्मद; इन सबका आचरण एक न रहा हो, लेकिन इनके विचार की भूमिका और सिद्धान्त में समानता होगी! कृष्ण योगी थे, शुक त्यागी; पर ज्ञान की भूमिका में वे एक थे। जब तक बुद्धि ऐसी निरपेक्ष नहीं बनती, तब तक विचार शुद्ध नहीं होता।

मैंने एक बात मानी है कि शुद्ध विचार करने की शक्ति मनुष्य-मात्र में है। प्रश्न यह है कि शुद्ध विचार के लिए कोई आलम्बन, आधार, मार्गदर्शक की जरूरत है या नहीं? आप आधार किसे कहते हैं? पहाड़ चढ़ने के लिए मैं लाठी लेता हूँ और जब तक पैरों में ताक़त नहीं रहती, तब तक उसका उपयोग करता हूँ। बालक जब तक चलना नहीं सीखता, तब तक उसे धक्कागाड़ी का सहारा दिया जाता है। पुराने लोग गुरु किया करते थे। ऐसे मार्गदर्शक की आवश्यकता मैं नहीं मानता, क्योंकि अगर हम ऐसी परम्परागत वस्तु को स्वीकार करेंगे, तो बुद्धि उसके बाहर जा नहीं पायेगी। आलम्बन को परखना पड़ेगा। कल मैंने कहा था कि जिस बात को लेकर क़ुरान, बाइबल और वेद आदि में विरोध मालूम हो, उसे मानना आवश्यक नहीं। जो विचार दूसरे के विचार से बाधित नहीं होता, वह शुद्ध विचार है; जो प्रमाण दूसरे प्रमाण से बाधित होता है, वह प्रमाण सच नहीं कहा जाता। विचार की प्रामाणिकता का एक लक्षण यह है कि वह दूसरे विचार का बाधित न हो। दूसरे के विचारों के साथ जहाँ मेरा विचार-समन्वय हो, सहमति हो, संवादित्व हो, वहाँ मेरा विचार शुद्ध है। जहाँ संवाद न होता हो, वहाँ समूचा विचार बदलना चाहिए।

शुद्ध विचार के लिए ठोस सहमति होती है। बुद्धि का समाधान अधिक-से-अधिक सहमति में होता है। ग्रन्थों के विचारों में से जितनों में समन्वय होगा—संवादिता होगी, उतने ही विश्व में प्रतिष्ठित होंगे, शेष साम्प्रदायिक बन कर रह जायँगे। आलम्बन किसका लिया जाय? बड़े नेताओं ने गीता का आधार क्यों लिया? इस देश की परम्परा है कि विचार प्रस्तुत करने वालों ने उस पर अपने हस्ताक्षर नहीं किये। यदि विचार शुद्ध है, तो फिर उन्हें चिन्ता नहीं है कि वह उनके नाम पर चढ़े। शुद्ध विचार जब परम्परा में से प्राप्त होता है, तो वह मनुष्य-जीवन में है ही, मनुष्य-जाति की उसमें निष्ठा रही है। इस देश में गीता को पवित्रता और प्रतिष्ठा प्राप्त है, इसलिए उसके सहारे शुद्ध विचार रखा जाय, तो समाज में उसके पचने में—समझने में सरलता, सुलभता होती है। इसमें विचार की प्रतिष्ठा है। मैं दादा धर्माधिकारी के नाते आज एक विचार कहूँ और कल मुझे पता चले कि वह विचार गांधी या विनोबा की पुस्तक में है, इसलिए बताऊँ कि वह उनका है, तो वह विचार अधिक सुप्रतिष्ठित बनता है। यदि उसे अपने नाम चढ़ाने की आकांक्षा मन में न हो, तो जो ग्रंथ या व्यक्ति समाज में प्रतिष्ठित है, उसके आधार से कहने पर उसे प्रस्तुत करने में सुलभता होती है। इसी कारण बहुत से लोगों ने गीता का आधार लिया है, फिर भी बात अपनी कही है। इसका प्रमाण यह है कि अर्थ सबने अलग-अलग किये हैं। बात हर एक की अपनी है, आधार गीता का है। श्रीकृष्ण का नाम और गीता का आधार लेने में उनकी नम्रता है, चतुराई या चालाकी नहीं। विचार प्रस्तुत करने की एक कला है।

साधारण मनुष्य में बुद्धि, विचार जाग्रत करने की कोशिश करनी चाहिए। यह नहीं मानना चाहिए कि वह विचार नहीं कर सकता। मनुष्य जिस प्रमाण में विचार-विमुख बनेगा, उतना ही वह सत्ता की तरफ़ जायेगा, अन्ध-प्रामाण्य मानेगा। 'तुझमें बुद्धि नहीं है, इसलिए तू मेरी बात मान', इस चीज़ ने मनुष्य को पशु बना दिया है। इस रीति में दोनों ओर जोखिम है। दूसरे के पीछे जाने में भी जोखिम है।

संसार की वर्तमान समस्या वैज्ञानिक है, बुद्धि की है। आज वादों का साम्राज्य है। रूस दूसरे देशों पर राज्य करना नहीं चाहता—कर भी नहीं सकता; किन्तु ये सब चाहते हैं कि हमारे वाद की पकड़ दुनिया पर रहे। अर्जुन की समस्या विचार की थी। विचार की शक्ति को ही मैं बुद्धि कहता हूँ।

www.vinoba.in

मनुष्य की बुद्धि अथवा विचार में जब भावना नहीं होती, तो वह कोरा पाण्डित्य कहलाता है। सद्भावनाशून्य विचार सामाजिक मूल्य नहीं बन सकता। मनुष्य में अनेक प्रकार के संस्कार होते हैं। ये संस्कार उसके मनोविकार के अनुसार होते हैं। इसलिए मैंने कसौटी यह बनायी कि मेरे विचार दूसरे बहुतों के विचार के साथ मेल खाते हैं, तो समझना चाहिए कि वे विचार मेरे नहीं हैं। जब कोई विचार व्यापक बनता है, तो उसमें दोष कम हो जाते हैं। विकार के सार्वत्रिक होने पर वह विकार नहीं रहता। पाँच आदमी मिल कर विचार करते हैं कि चोरी करनी है—लेकिन आपस में नहीं करनी, इससे वह सार्वत्रिक नहीं रहता। विकार वह है, जो सार्वत्रिक नहीं होता।

मार्गदर्शक के विषय में मैं यह कहूँगा कि जिस व्यक्ति ने अपने जीवन में दूसरों को अधिक से अधिक स्थान दिया है, वह हमारे जीवन का मार्गदर्शक बन सकता है। शुद्ध विचार उसीके होते हैं कि जिसने अधिक-से-अधिक मनुष्यों को अपने जीवन में सम्मिलित करने की कोशिश की है। उसके आचार की, सदाचार की कसौटी यह है कि उसके मन में दूसरों के लिए सदा प्रेम है, अनुकम्पा है। साधारण मनुष्य के लिए यह कसौटी है कि जिसका हृदय विशाल और आचरण उच्च, वह श्रेष्ठ। उच्च आचरण का अर्थ है, दूसरों को अधिक-से-अधिक मात्रा में अपने जीवन में सम्मिलित करने की वृत्ति। साम्प्रदायिक कसौटी अलग होती है। गांधी-विनोबा सदाचारी हैं, पर वे सदाचारी मुसलमान नहीं, क्योंकि वे पाँच बार नमाज नहीं पढ़ते और इसी तरह मुहम्मद को ही एकमात्र रसूल नहीं मानते। (शेष अगले अंक में)

१९५७ की व्यूह-रचना !

(ठाकुरदास बंग)

अभी परंधाम (पवनार) में भारत भरके भूदान-कार्यकर्ताओं का पाँच दिन तक एक शिविर हुआ। १९५७ को ख्याल में रखते हुए लोकक्रान्ति की व्यूहरचना कैसी की जाय, इस पर वहाँ चर्चाएँ हुईं। पलनी में निधिमुक्ति एवं तंत्रपरिवर्तन का जो निर्णय लिया गया था, उस कारण कार्यकर्ताओं में अपार उत्साह था। अब आंदोलन जनता का होने जा रहा है, अतः जनता इसे जरूर उठावेगी एवं सफल करके बतावेगी, यह आशा सभी के मन में थी। तंत्र के बिना काम करने के अभ्यस्त न होने के कारण हम फिर से कहीं तंत्रपरिवर्तन के नाम पर नया तंत्र खड़ा न कर दें, इस बारे में काफी जागरूकता कार्यकर्ताओं ने बरती।

आ-जाकर गाड़ी इन पाँच सालों में यहीं रुकती थी कि कार्यकर्ता बढ़ रहे हैं जरूर, लेकिन क्रांति के गणित से नहीं बढ़ रहे हैं। इसलिए विनोबाजी ने सोचा कि कार्यकर्ताओं के बढ़ने में आज की समितियाँ या आज मिलने वाला सीमित वेतन रुकावट डालते हों, तो ये रुकावटें भी दूर कर दी जायँ और जनता पर सीधी जिम्मेवारी डाली जाय। जनता का आंदोलन हो जाय, तो जनता ही खुद आंदोलन का खर्च चलावेगी। आज तक कार्यकर्ताओं ने नमूने का काम किया। ४०-४५ लाख एकड़ जमीन प्राप्त की। ५-६ लाख एकड़ जमीन बाँटी। हजारों दाताओं से संपत्तिदान-पत्र प्राप्त किये। इससे कार्यकर्ताओं को आंदोलन के संचालन की शिक्षा मिली और जनता इस आंदोलन से परिचित हुई। शुरू से ही भूदान-समितियाँ एवं निधि की मदद न होती, तो यह शिक्षा एवं व्यापक परिचय असम्भव तो नहीं, लेकिन कठिन अवश्य साबित होते।

तंत्र नहीं, मंत्र

अब १९५७ आ रहा है। कार्यकर्ता-युग समाप्त हुआ। १९५७ में क्रांति का प्रथम चरण पूर्ण करना है। यानी कम-से-कम कोई भूमिहीन न रहे, यह स्थिति सब गाँवों में पैदा करनी है। अतः अब खुद जनता ही जमीन प्राप्त करे और जमीन बाँटे। आज तक कार्यकर्ता यह अपनी जिम्मेवारी मानते थे। अब यह जनता का अधिकार एवं जिम्मेवारी है कि वे अपने-अपने गाँव की भूमिहीनता मिटाने के लिए जमीन प्राप्त करें एवं तत्क्षण उसे बाँट दें। अभी तक वितरण के नियमों में बँधा हुआ तांत्रिक आंदोलन चला। अब आंदोलन तंत्र के आधार पर नहीं, लेकिन 'हमारे गाँव में भूमिहीन कोई न रहेगा', इस मंत्र के आधार पर चलेगा।

तो फिर कार्यकर्ता का काम क्या रहेगा ? कार्यकर्ता का काम है, मुक्त विचार-प्रचार। सिंह के बच्चे की भाँति वह निर्भय होकर जनता में संचार करेगा और शोषणविहीन शासन-मुक्त समाज का विचार फैलावेगा। चूँकि भूमिदान-यज्ञ से उसका आरंभ होता है और १९५७ तक प्रथम कदम उठाना है, अतः भूदानयज्ञ के विचार की आचार में परिणति करने का भार वह जनता पर डालेगा और हर गाँवों में भूमिहीनता मिटाने के लिए कितनी जमीन चाहिए, इसका गणित समझावेगा। विचार-प्रचार का अच्छा माध्यम साहित्य एवं भूदान-पत्र-पत्रिकाएँ हैं, अतः हर गाँव में भूदान-पत्रिका पहुँचे, ऐसा प्रयत्न वह करेगा। भूदान के विचारों का लाभ सबको मिलना चाहिए और १९५७ में क्या गली में एवं क्या चौराहे पर, कहीं भी भूदान के अलावा दूसरी बात हवा में नहीं होनी चाहिए, अतः पत्रिका के सामुदायिक वाचन की भी वह व्यवस्था करेगा। हर गाँव में किसी सहयोगी को ढूँढ़ना होगा, जिसने भूदान या संपत्तिदान दिया हो और जो प्रतिसप्ताह पत्रिका का मजमून लोगों को पढ़ कर सुनाये। कार्यकर्ता पर विचार-प्रचार की जिम्मेवारी और जनता पर भूमिहीनता मिटाने की जिम्मेवारी हो।

इसी दृष्टि से संमेलन तक अधिक से अधिक गाँवों में जाने की तैयारी हम करें, यह परंधाम में सोचा गया। इस संदेश को पहुँचाने के काम में सामूहिक पदयात्रा सभी प्रांतों में बड़ी मददगार सिद्ध हुई, अतः उसीके द्वारा संदेश पहुँचाने का काम अधिक से अधिक गाँवों में किया जाय, ऐसी राय रही। लेकिन यह सब काम कौन करेगा ? आंदोलन अब जनता का हो गया है, अतः उसी स्वामी को जगाना चाहिए और इस देवता का आवाहन करना चाहिए। महात्मा गांधी ने १९२० में, ३० में, ४१ में एवं फिर ४२ में जनता का आवाहन किया था। हजारों-लाखों लोगों ने वह सुन कर अपने घरबार छोड़े और आश्चर्यजनक कुरबानियाँ कीं। अब १९४२ के बाद १४ साल भारतीय जनता ने विश्राम लिया। त्याग का कोई कार्यक्रम देश के सामने नहीं रहा था। क्या फिर एक बार जनता अपनी गरीबी की एवं मालकियत की बेड़ियों को तोड़ने के लिए अब आगे नहीं आवेगी ? वर्धा जिले के कार्यकर्ताओं ने तय किया कि १९५७ में अपना घरबार छोड़ कर घूमने वाले ऐसे १०० दीवाने वे ढूँढ़ेंगे। चूँकि इतने लोगों को संपत्तिदान या अन्य साधनों से निश्चित मासिक निर्वाह-व्यय नहीं दिया जा सकता, अतः ये ८-१० कार्यकर्ता भी कोई निर्वाह-व्यय नहीं लेंगे। घरबार की व्यवस्था रिश्तेदार एवं मित्रों पर सौंप कर हम १ साल की खुशी की जेल स्वीकार करेंगे। अकोला जिले के कार्यकर्ताओं ने भी ऐसी ही बात तय की है।

इस प्रकार का कार्यक्रम सभी जिले वाले कर सकते हैं। १९५७ के लिए १ लाख की रिक्रुट-भरती में क्या देर लगेगी ? ये १ लाख सेवक १० लाख सहयोगियों को ढूँढेंगे एवं मुक्त विचार-प्रचार निरंतर चलेगा और इन सबके बल पर क्रान्ति होगी। फिर कोई भी एक दिन तय किया जावेगा और उस दिन गाँव-गाँव के लोग बैठ कर आपस में बाँट लेंगे।

लेकिन क्या ऐसे १ लाख लोग मिल सकेंगे ? किसी भी बड़े काम में ऐसा तर्क दुनिया के प्रारंभ से चलता आया है, उसका उत्तर प्रत्यक्ष कर्म ही है। क्या यह नहीं पूछा जाता था कि निःशस्त्र भारतीय भी अहिंसा से अंग्रेजी राज को पलट सकते हैं ? क्या भूदानयज्ञ में खुशी से कोई जमीन देगा ? जमीन थोड़ी-बहुत भले ही मिल जाय, लेकिन क्या ग्रामदान सम्भव है ? क्या लोग अपना-अपना वेतन खुशी से छोड़ कर काम जारी रखेंगे ? अतीत ने इन प्रश्नों के उत्तर दे दिये हैं और फिर भी शंका बनी रहती है। यदि इंग्लैंड, रूस, अमेरिका, जापान एवं जर्मनी में दस में से एक आदमी देश को बचाने के (!) लिए फौज में भरती हो सकता है, तो क्यों नहीं भारत में गरीबी को मिटाने के लिए इस प्रेम की क्रांति में आगे आवेंगे ? दसवाँ हिस्सा नहीं, सौवें की भी बात नहीं, लेकिन क्या कम-से-कम ३६००वाँ हिस्सा लोग आगे नहीं आवेंगे ? और फिर ये लोग घूमने लगें, तो इससे कई गुना आंशिक समयदान देने वाले आगे बढ़ेंगे। और इतने पूर्ण एवं आंशिक समयदानी आगे आने पर क्या क्रांति बहुत दूर रह जावेगी ? सब राजनीतिक पक्षों ने जिस विचार को मान्यता दी है, लाखों आदमी खुद का दान देकर जिसके लिए दीवाने बन कर घर-घर घूमते हों, दस-बीस लाख आदमी खुद दान देकर जिसका नियमित प्रतिसप्ताह पठन करते हों, करोड़ों आदमी जिस बात को प्रतिसप्ताह उत्सुकता से सुनते हों, तब क्या क्रांति की घड़ी ढूँढ़ने के लिए किसी ज्योतिषी को ढूँढ़ना होगा ? इससे बुद्धिमानों का बुद्धिपरिवर्तन होगा, सहृदय लोगों के हृदय को पावन प्रसंगों का परस होकर उनका हृदय पसीजेगा और इन दोनों से और लाखों लोगों की तपश्चर्या से परिस्थिति में परिवर्तन होगा और जब परिस्थिति-परिवर्तन हो जायगा, तब क्रांति को अलग से ढढ़ने की जरूरत नहीं रहेगी।

---

www.vinoba.in

तंत्रमुक्ति के फलितार्थ

(लक्ष्मीनारायण भारतीय)

भूदान-आंदोलन तंत्र से मुक्त होकर जनताजनार्दन की गोद में प्रवेश कर रहा है !

क्रांतियों के इतिहास में यह एक अनोखी घटना है। जहाँ कलियुग में 'संघ-शक्ति' ही मुख्य मानी गयी है और संगठन एवं तंत्र के बिना एक कदम भी आगे बढ़ना कठिन माना जाता है, वहाँ एक बने-बनाये और लोक-संग्रहकारी संगठन को तोड़ देना निस्संदेह बहुत महत्त्व की घटना है। जहाँ पद-पद पर यह महसूस होता है कि बिना संगठन के हम कर ही क्या सकते हैं, वहाँ एक बड़े आंदोलन के प्रणेता द्वारा संगठन का ही विसर्जन क्या खतरनाक प्रयोग नहीं है ?

वस्तुतः विनोबा शुरू से ही संगठन-वृत्ति के खिलाफ रहे हैं। अक्सर वे कहते कि क्या शेरों ने भी अपना कोई संगठन बनाया है ? सर्वोदय-समाज की स्थापना के समय, उसकी इतनी ढीलीढाली रचना, उन्हींके प्रयासों का फल रहा है। तो क्या इसका मतलब यह है एकाकी हालत में ही मनुष्य रहे, किसी के सहयोग में वह न चले, क्योंकि सिंह भी तो एकाकी स्थिति में ही रहता है ! लेकिन इस उपमा से विनोबा सेवक की निर्भयता एवं शक्ति की ओर ही इंगित करते हैं। सामने उपमा का चित्र भी यही खड़ा होता है। यह सेवक की व्याख्या है, कार्यकर्ता का रूप है। जहाँ समाज का रूप आया कि वे सर्वोदय-'संघ' नहीं, सर्वोदय का 'समाज' ही चाहते हैं ! अगर इस कदम की ओर हम गहराई से देखें, तो सहज पायेंगे कि सर्वोदय की व्यापक एवं गहरी व्याख्या ही इसमें काम कर रही है। 'एक' नहीं, 'कुछ' भी नहीं, 'सबके सब' महान् अनुष्ठान में लगें, त्याग और तप की साधना सर्व-सामान्य बने, यह इसका गर्भित अर्थ है। साध्य यदि महान् है, साधन भी यदि महान् है, तो साधक भी महान् क्यों न बनें ? और वे साधक—भले ही सबकी शक्ति एवं क्षमता समान न हो—चंद ही क्यों रहें ? सबका हविर्भाग इस यज्ञ में क्यों न हो ? वैसे, सब कोई दाता बन जाते हैं, तो वह हविर्भाग कुछ हद तक हो ही जाता है, लेकिन केवल दाता बनने से काम नहीं चल सकता, क्योंकि दाता किसीके आगे आने की, कहे जाने की राह भी देख सकता है। विनोबा तो अभिक्रम भी उसके हाथ सौंपना चाहते हैं। दाता तो सब बनें ही, अभिक्रम भी सब अपने हाथ में लें और जो भी त्याग-तप-साधना करनी हो, सभी करें और मिल कर करें। चंद लोग ही त्यागी, कार्यकर्ता या साधक बनते ही आये हैं। वह कोई नयी चीज नहीं है। लेकिन सारे समाज को, उसकी क्षमता के अनुरूप, "उदय" की साधना में हाथ बँटाने की प्रेरणा हो, साथ ही सबकी नैतिक शक्ति का संवर्धन भी हो, क्या यह 'सर्वोदय' की ही सीधी राह नहीं है ? क्या तंत्रमुक्ति का यह इंगित नहीं है ?

'तंत्र' तोड़ना तो एक निषेधात्मक रूप है। लेकिन वह उसी क्षण विधायक रूप की भी आकांक्षा प्रकट करता है कि जिस काम को तंत्र से मुक्त किया गया है, वह काम 'सर्वव्यापी', 'सर्वग्राही' हो जाय। जिसके लिए वह काम है, वही जनता-जनार्दन इसे उठा ले। "हम तो औजार मात्र हैं," "हमें अहंकार-मुक्ति तो सधे ही" आदि वचनों के आचरण का और क्या व्यावहारिक रूप हो सकता था ? कार्यकर्ता इन वचनों की राह पर भी सहज चल सकें, 'हम काम के संयोजक या प्रेरक हैं,' यह कभी भूलवश जगने वाली अहंकार-भावना भी न जग सके और शक्तिदायी ईश्वर-शरणता की राह प्रशस्त हो सके, यह इसका विधायक रूप है, जिसकी भित्ति है, जनता-जनार्दन पर इसे छोड़ देना। क्रांति तंत्र के बंधनों में होकर नहीं पनप सकती, आदि तो उसके व्यावहारिक अंग मात्र हैं। वस्तुतः क्रांति व्यक्ति या व्यक्ति-समूह या संगठन ही करें, यह सत्याग्रही तत्त्वज्ञान के ही अनुकूल नहीं है। सत्याग्रह के तत्त्वज्ञान में तो एक भी व्यक्ति उसके दायरे से अलग न जा पड़े, सबकी शक्ति का विधायक उपयोग हो और सत्य के आग्रह के लिए जो तप-शक्ति चाहिए, वह सब मिल कर प्रकट करें, यह अर्थ भी अभिप्रेत है, जिसका एक कसौटी का अवसर तंत्र-मुक्ति के निर्णय ने उपस्थित किया है।

"कलियुग में 'संघ-शक्ति' ही बलवान होती है," इस विधान का अर्थ 'संगठनों एवं तंत्र-व्यवस्थाओं' तक ही महदूद हो गया था। लेकिन 'संघ' याने चंद लोगों का संगठन नहीं, सबका समाज, सर्वोदयी-समाज और ऐसे सबके समाज की नैतिक शक्ति, यह अर्थ ही "संघ-शक्ति कलियुगी" में अभिप्रेत है, इसे सिद्ध करने की आकांक्षा भी यहाँ प्रस्तुत हुई है। चंद लोगों की शक्ति या संघटन की शक्ति अहिंसक ही रह सकती है, ऐसी कोई संरक्षक मर्यादा नहीं है। लेकिन जहाँ सभी में शक्ति के अधिष्ठान की बात उपस्थित होती है, वहाँ वह अहिंसक शक्ति ही हो सकती है। और अहिंसक शक्ति की उपासना, उसका आधार सबके लिए सुलभ है, हिंसा की शक्ति का उपार्जन-संवर्धन सबके लिए संभव नहीं है, यह सत्याग्रह के बापू-प्रणीत विवेचन में प्रकट ही था !

इस तरह अनेक पहलुओं से इस कदम के फलितार्थ प्रत्यक्ष होते हैं। निस्संदेह उन छोटे कंधों पर बड़ा भार विनोबाजी ने डाल दिया है, लेकिन कार्यकर्ताओं ने जिस उत्साह एवं प्रेरणा के साथ इसे ग्रहण किया है, वह इस कदम की प्राथमिक सफलता सहज प्रकट कर देता है। कार्यकर्ताओं में तेज का संचार हुआ है, यह प्रत्यक्ष ही है। पर जनता में यह प्रक्रिया और प्रतिक्रिया अभी होनी है और वहीं पर इस कदम की खरी कसौटी है। लेकिन कार्यकर्ता जनता और क्रांति के बीच अक्सर आ जाते हैं, ऐसी स्थिति हर आंदोलन में आती है। इस आंदोलन में भी यह कहा जाता रहा कि कार्यकर्ता ही जनता के पास नहीं जा पाते, वह तो तैयार ही है ! पर कार्यकर्ताओं ने अब ऐसी उड़ान भरी है कि अब कोई उन्हें ऐसा कह नहीं सकता। कहीं शंका या चिंता भी प्रकट होती है, पर उसके मूल में कारण है-'निधि और 'तंत्र' का अब तक का गठ-जोड़ ! दोनों यदि अलग-अलग पनपते, तो स्थिति शायद दूसरी ही होती, लेकिन परिस्थिति को संभवतः यही मान्य था। निधिमुक्ति के भी फलितार्थ दूसरे हैं, लेकिन इतना तो स्पष्ट ही है कि तंत्रमुक्ति के लिए वह क़दम भी सहायक ही है, बल्कि वह तेजोवृद्धि करने वाला भी साबित हो सकता है— यदि विनोबा के शब्दों में, वह "राम-सन्निधि" का रूप ले ले !

लेकिन तंत्रमुक्ति के कदम का महत्त्व स्वतंत्र है और उसके फलितार्थ भी दूर-गामी हैं। उसका निकट का अंगीकृत कार्य भी कम कसौटी का नहीं है। उत्साही और प्रेरित कार्यकर्ताओं पर अब यह गुरुतर भार आ पड़ा है कि जनता का और आंदोलन का सीधा संबंध जोड़ कर जनता ही इसे उठा ले, ऐसी स्थिति उन्हें खड़ी करनी है। विनोबा जब यह कहते हैं कि यह संकल्प देश का संकल्प है और देश की सभी प्रमुख राजनीतिक पार्टियों ने, नेताओं ने और जनता ने यदि इस आंदोलन को हार्दिक सम्मति और आशीर्वाद प्रदान किया है, तो स्वभावतः उस सहानुभूति को सक्रिय करने और उन्हें कार्य-प्रवण बनाने का अवसर उपस्थित करने की जिम्मेदारी भी सहज आ जाती है। विनोबा ने देखा कि इस काम में तंत्र कुंठित भी कर सकता है, तो उन्होंने रस्सी ही तोड़ डाली ! लेकिन तंत्र हट जाने पर जो रिक्तता (वैक्यूम) पैदा होता है, वह यदि अपने भीतर कार्यकर्ताओं को दबोच ले, तो गंभीर परिणाम भी आ सकते हैं ! परन्तु ऐसा कोई वैक्यूम खड़ा ही न रहे, उस तंत्र से भी शक्ति-शाली चीज उसके स्थान पर तत्क्षण मौजूद रहे, इसलिए उन्होंने उसे मंत्र-पूरित भी कर दिया है। मंत्र आया और तंत्र गला ! उसी मंत्र से दीक्षित एवं पूरित होकर कार्यकर्ताओं को अब जन-सागर में विलीन हो जाने की प्रेरणा विनोबा दे रहे हैं। तंत्र की जगह मंत्र आ जाने से खतरा खत्म हो जाता है। जन-शक्ति का जो दर्शन अब तक उनके 'आत्म विश्वास' को जमाते आया है, वही आगे भी उन्हें प्रेरित और 'आत्म-निर्भर' भी करता रहेगा, इसमें संदेह नहीं।

जब रक्षक भक्षक बनता है—

रूस के कारण अमरीका, हिंदुस्तान के कारण पाकिस्तान अपनी शस्त्रास्त्र-वृद्धि करते हैं। सही चीज क्या है ? अपना ही प्रतिबिंब हमें आईने में दीख रहा है ! हमें डर मालूम होता है, तो हम अपनी तलवार मजबूती से पकड़ते हैं और आईने वाली तसवीर भी वैसा ही करती हैं। तो हमें यह पहचानना है कि वह हमारा ही प्रतिबिंब है। अगर हिंदुस्तान कम-से-कम सेना रखने की हिम्मत करेगा, तो सारी दुनिया में वह नैतिक शक्ति प्रकट करेगा। लेकिन जब तक ये सारी सरकारें हमने अपने सिर पर उठा रखी हैं, तब तक यह होने वाला नहीं है, क्योंकि एक तरफ चंद लोग करोड़ों लोगों के लिए अपने को जिम्मेवार मानते हैं, तो करोड़ों लोग भी यही समझते हैं कि वे ही हमारी रक्षा करेंगे। इसलिए उनका चित्त सदा भयभीत रहता है। जहाँ चित्त भयभीत होता है, वहाँ दारोमदार सेना पर होती है और सेना पर रक्षा का जितना भार पड़ता है, उतना ही भय भी बढ़ता ही है। जब तक हमने सरकार-रूपी सत्ता अपने सिर पर उठा ली है और जब तक उसीसे हम अपने को सुरक्षित मानते हैं, तब तक हम अत्यंत असुरक्षित ही हैं।

(पेरय्युर, मदुरा, २४-१२)　　—विनोबा

www.vinoba.in

प्राप्त और वितरित भूमि, संपत्तिदान, ग्रामदान आदि का विवरण

प्रांत	तारीख तक	भू-प्राप्ति एकड़ों में	दाता	वितरित भमि एकड़ों में	परिवार संख्या	संपत्तिदान पयों में	दाता	ग्रामदान	जीवन दान
आसाम	३०-४-५६	५०००	—	४२	—	२५००	—	१२	—
आन्ध्र	३०-९-५६	६९५९३	६८५७	६८४	३७२	२०४३४१	१५४०	५६	८
उत्तर प्रदेश	३१-८-५६	५८६०९९	२६१८२	७६३०५	३८३२६	५६७८६	२०९९	९	१९०
उत्कल	३०-९-५६	३१३३०५	९९३५६	९४१९६	१७५१५	४१४५३	४४१७	१३०२	५६
कर्नाटक	३१-१०-५६	४४२४	१०३८	६९९	२४५	२५७१	१६२	१	१०
केरल	३१-१०-५६	२९०२१	४६३७	२१२६	१२७४	७५०६	५०६	—	१४७
गुजरात	३०-११-५६	४७४८६	११३०९	११५२७	३५२९	९०९२	६१	१	२९
तमिलनाड	३१-१०-५६	६७८८३	२०९९५	४५८४	१७४९	३१८९८४	२२६६५	१०	३७
दिल्ली	३१-५-५६	३९६	१७५	१५७	९५	१४८९९	३८	—	—
नाग-विदर्भ	३०-९-५६	७८३११	१४१२६	२९४८४	३४१६		६५००	—	१७०
पंजाव-पेप्सू	३०-९-५६	१६१३३	३९१४	१३८३	३३७	८३८८८	१४४२	—	१९
बंगाल	३०-११-५६	१२१९२	७९५९	२८१२	२३५३	३८४७९	१७३७	७	४५
बम्बई	३०-४-५६	६७४	—	—	—	१४०१९४	—	—	—
विहार	३१-१०-५६	२१५४१८९	२९६४०२	१५५४०५	७२२२७	१६२०९९	३३१४४	६२	१३१७
महाकोशल	३१-१०-५६	९०५१९	३५१९६	२१८३५	५३५४	१८८३१	७००	—	—
मध्यभारत	३०-९-५६	६११४६	९०९०	३०९४	९१७	२७५९५	१२७५	१०	४४
महाराष्ट्र	३१-१०-५६	४११०३	६६१५	५१७४	१२१०	२३०००	३११	६	५०
मैसूर	३१-११-५६	९६४८	३६९४	४००	७३	१३३३६	१७३	—	—
राजस्थान	३०-९-५६	३९३३४७	७०७३	२६८३४	४५११	७७९८५	३६२९	७	५२
विन्ध्य-प्रदेश	३१-१०-५६	१०८६७	२४८६	१९९२	५४१	६८२३	—	—	—
सौराष्ट्र	३१-१०-५६	३१२३७	९३३०	८१८५	११०७	—	—	—	५
हिमाचल प्रदेश	३१-५-५६	१५६८	१२१	२१	८	१०५०	—	—	—
हैद्राबाद	३१-१०-५६	१७९४९२	१०९७२	४७४११	१०८३५	२५५४५	५४४	४	१५
	कुल	४२,०४,३४३	५,७७,५२४	४,९४,३५०	१,६,५,९९४	१२,७६,९५७	८०,९४७	१,४८७	२,१९४

अन्य स्थानों से आँकड़े प्राप्त नहीं हुए, अतः नहीं दिये जा सके।

अ० भा० सर्व-सेवा-संघ, बुनियादगंज, गया

ता० १५-१२-'५६

—कृष्णराज मेहता, दफ्तर-मन्त्री

आगे की कार्य-रचना और उसके संबंध में सूचनाएँ

[सर्व-सेवा-संघ की प्रबंध-समिति की बैठक, ता० २५ से २७ दिसम्बर, खादीग्राम में स्वीकृत]

शुरू में खुद विनोबाजी ने एक साल तक भूदान-आंदोलन का संयोजन किया। फिर विनोबाजी के मार्गदर्शन में इस आंदोलन का देश-व्यापी संयोजन करने का भार सेवापुरी-सम्मेलन के अवसर पर सर्व-सेवा-संघ ने अपने ऊपर लिया। अब यह कार्य आम जनता उठा ले, यह अपेक्षित है। इसे ध्यान में रखते हुए आगे की कार्य-रचना क्या हो, इसके बारे में कुछ संकेत नीचे दिये जा रहे हैं :

(१) भावी काम की कल्पना में मुख्य बात यह है कि क्षेत्र और काम का संबंध चेतन के, अर्थात् व्यक्ति के साथ हो। समितियों आदि के तंत्र में आन्दोलन न बंधे।

(२) आंदोलन के लिए यह आवश्यक है कि जगह-जगह लोग स्वयंस्फूर्ति से आंदोलन का काम उठा लें। साथ ही जगह-जगह ऐसे सत्याग्रही सेवकों का होना भी इष्ट है, जो सर्वोदय के आदर्श में पूरी निष्ठा रखते हों तथा उसकी स्थापना को अपने जीवन का मुख्य काम मानते हों। ऐसे लोकसेवक के बारे में क्या अपेक्षा है, यह अन्त में दिया गया है।

(३) साधारण तौर पर क्षेत्र जिले से बड़ा न हो, छोटा हो सकता है। एक जिले में दो-चार योग्य सेवक हों, तो तहसील-तहसील के काम की जिम्मेवारी वे उठा सकते हैं, बशर्ते कि उनको अलग-अलग काम करके शक्ति पैदा करने में विश्वास हो। अन्यथा अनेक सेवक एकत्र ही जिले में काम कर सकते हैं। जिले के काम की जानकारी रखने की दृष्टि से सर्व-सेवा-संघ उनमें से किसी एक के साथ संबंध रखेगा।

(४) जिला-सेवक पूरा समय इसी काम में देने वाले हों, अर्थात् दूसरे किन्हीं कामों के संचालन की जिम्मेवारी उन पर न हो।

(५) जिला-सेवक जिले में दानपत्र, साहित्य व हिसाब आदि रखने की उचित व्यवस्था करेगा। कार्यालय का नाम "सर्वोदय-कार्यालय" रहे।

(६) रचनात्मक संस्थाओं, परिवारों, पक्षों या शिक्षण-संस्थाओं आदि भिन्न-भिन्न समूहों में से तथा उनके द्वारा कार्यकर्ता जुटाने का प्रयत्न किया जाय। उपरोक्त कार्यकर्ताओं के अलावा अन्य कार्यकर्ताओं की व्यवस्था दाताओं या दाता-संघों द्वारा करने का प्रयत्न किया जाय। जिला-कार्यालय तथा जिले के काम संबंधी अन्य सारा खर्च अन्नदान, सूत्रदान, सम्पत्तिदान आदि से चलाया जाय।

(७) गाँव-गाँव में सर्वोदय-निष्ठ व्यक्तियों और ग्रामोदय-समितियों के जरिये भूदान तथा सर्वोदय का काम आगे बढ़ाने का प्रयत्न किया जाय। ग्रामोदय-समितियों की सदस्यता की एक अनिवार्य शर्त यह हो कि उन व्यक्तियों ने भूदान, सम्पत्तिदान या श्रमदान दिया हो।

(८) क्षेत्र-क्षेत्र के सेवक आंदोलन के काम में आवश्यकतानुसार आपसी सहयोग, विचार-विनिमय आदि करें; पर इसके लिए किसी समिति का निर्माण न किया जाय।

(९) प्रकाशन के काम के लिए सामान्य तौर पर भाषाई क्षेत्र के आधार पर समितियों की योजना सर्व-सेवा-संघ करेगा या करायेगा। जिलों के काम के आँकड़े समय-समय पर सीधे सर्व-सेवा-संघ को भेजने के अलावा जिला-सेवक या कार्यालय संबंधित प्रकाशन-समिति को भी भेजेगा। प्रकाशन-समिति इनका उचित संकलन और प्रकाशन आवश्यकतानुसार करेगी। हिन्दी भाषी क्षेत्र के अलग-अलग राज्यों में आँकड़ों के एक जगह इकट्ठे होने तथा उनके प्रकाशन की व्यवस्था की जा सकती है।

(१०) ग्राम-निर्माण आदि कामों के लिए स्थानीय प्रयत्न और अभिक्रम से प्रांत के सर्वोदय-प्रेमियों की संस्था या संगठन बने या कहीं इस प्रकार का संगठन पहले से बना हुआ हो, तो वह इस काम को उठा ले।

(११) प्रकाशन तथा निर्माण के काम के लिए संचित निधि, सरकारी या अन्य सूत्रों से अपनी शर्तों पर सहायता प्राप्त की जा सकती है।

www.vinoba.in

(१२) कार्यकर्ता समय-समय पर विचार-विनिमय, अध्ययन, चिंतन व श्रम, अपरिग्रह, सत्य, अहिंसा आदि के अनुसार जीवन बिताने का अभ्यास कर सके तथा शारीरिक विश्रांति या स्वास्थ्य-लाभ ले सके, इसके लिए प्रांतों में या स्थान-स्थान पर की संस्थाओं का उपयोग किया जाय। आगे जाकर हर जिले में ऐसे स्थान हों, तो अच्छा है।

सत्याग्रही लोकसेवक से अपेक्षा

(१) सत्य, अहिंसा और अपरिग्रह में उनकी दृढ़ निष्ठा हो और तदनुसार जीवन बिताने की वे कोशिश करते हों।

(२) लोकनीति की स्थापना से ही दुनिया में सच्ची स्वतंत्रता हो सकेगी, ऐसा उनका विश्वास हो। इसलिए वे किसी प्रकार की दलीय राजनीति (पार्टी पॉलिटिक्स) में या सत्ता की राजनीति (पॉवर पॉलिटिक्स) में भाग नहीं लेंगे और भिन्न-भिन्न राजनैतिक पक्षों के व्यक्तियों का समान आदर-बुद्धि से सहयोग लेने की उनकी वृत्ति और प्रयत्न रहेगा।

(३) बिना किसी कामना के, समर्पण-बुद्धि से वे लोकसेवा करें।

(४) जाति (Caste) तथा वर्ग (Class) के किन्हीं भेदों को वे नहीं मानेंगे।

(५) वे सब धर्मों, पंथों तथा सम्प्रदायों के प्रति समान आदर-भाव रखेंगे।

(६) वे अपना पूरा समय और चिन्तन-सर्वस्व सर्वोदय के प्रत्यक्ष साधन-स्वरूप भूदान-मूलक, ग्रामोद्योग-प्रधान अहिंसात्मक क्रांति के काम में लगावेंगे।

(एक जिले में एक सेवक के साथ सर्व-सेवा-संघ संबंध रखेगा, लेकिन सत्याग्रही लोकसेवक एक जिले में अनेक हो सकते हैं। उन सबकी सूची सर्व-सेवा-संघ के दफ्तर में आवें।)

—कृष्णराज मेहता,
खादीग्राम, ता. २९।१२।५६ दफ्तर-मंत्री, सर्व-सेवा-संघ

क्रांति की चिनगारियाँ

पिछले अंक में हमने परंधाम (पवनार) के श्री दत्तोबा दास्ताने के सारे प्रॉविडंट फंड के छोड़ देने की खबर दी थी। यही कदम उनकी धर्म-पत्नी श्रीमती मालुताई दास्ताने भी उठाया है।

भंडारा (नागपुर) के एक समाज-सेवक वकील श्री शेंडुर्णीकरजी ने भूदान-कार्य के लिए अपनी वकालत छोड़ दी।

नाग-विदर्भ भूदान-संमेलन, बड़ेगाँव में करीब ७० लोगों ने भूदान के लिए १ साल की 'खुशी की जेल' स्वीकार करके काम में जुट जाने का संकल्प किया।

उड़ीसा में भूदान-आंदोलन का नया रूप

ता० ५ दिसंबर को उड़ीसा के प्रमुख भूदान-कार्यकर्ताओं की एक बैठक कटक में हुई थी, जिसमें सन् '५७ के क्रांतिकारी कार्यक्रम के बारे में चर्चा की गयी। निधि-मुक्ति और तंत्र-मुक्ति के निर्णय ने कार्यकर्ताओं में खूब उत्साह लाया है! चर्चा में अपना विचार प्रकट करते हुए एक कार्यकर्ता भाई ने कहा—"गाँव में निधि-मुक्ति की बात सुनते ही मैंने अपने परिवार के लोगों और गाँववालों को बुला कर समझाया कि मुझे भूदान-कार्य के लिए साल भर के लिए छुट्टी दीजिये, गाँव वालों ने खुशी से यह मान लिया है।" उनके २३ व्यक्तियों के परिवार में साल भर में खेती के लिए ३०० रुपया खर्च होता है। गाँववालों ने श्रमदान के द्वारा उतना दे देने का स्वीकार कर लिया है। इस साल कपड़े बाहर से खरीदने के बदले सूत कांत कर बनायेंगे, ऐसा संकल्प भी किया है।

निर्णय हुआ कि जिला-सेवक के तौर पर १६ जिलों में १६ कार्यकर्ता काम करेंगे। इनके अलावा श्री गोपबाबू पुरी जिले के साथ तथा नवबाबू ने संबलपुर के साथ अपना नाम जोड़ दिया है। दिसंबर माह में हर जिले के कार्यकर्ताओं में और जनता में '५७ का संदेश और आगे के कार्यक्रम का प्रचार करने के लिए विभिन्न स्थानों में संमेलन हुए।

१५ दिसंबर को कोरापुट जिले के अंबादला निर्माण-क्षेत्र में निर्माण और भूदान-कार्यकर्ताओं की एक बैठक हुई थी, जिसमें '५७ के कार्यक्रम के बारे में विचार हुआ। कोरापुट जिले में कस्तूरबा-निधि की तरफ से भूदान और रचनात्मक काम करने वाली दस बहनों ने विनोबाजी के इस तंत्र-मुक्ति का कार्यक्रम सुनते ही कस्तूरबा-निधि से मुक्त होकर काम करने का संकल्प घोषित किया।

बिहार :

संथाल परगना में ग्रामदान

संथाल परगना के लोगों में भूदान के प्रति उत्साह बहुत बढ़ा है। अब लोग बीघा-कट्ठा दान देने की बात नहीं सोचते, बल्कि सर्वस्वदान और ग्रामदान की ही बात सोचते हैं। गम्हरिया-घाट के पास पाँच गाँव ग्रामदान में और मिले हैं। इनके नाम हैं : कपाटी, पतमोहरा, डेलीपाथर, डुमरिया और पंडुआ। अब तक कुल ४० गाँव इस जिले में दान में मिल चुके हैं। इन गाँवों में पुनर्निर्माण का काम भी शुरू हो गया है। गाँवों को वस्त्रस्वावलंबी बनाने की दृष्टि से ग्रामदानी गाँव पतिरामपुर के अंबर-चरखा-प्रशिक्षण-शिविर में ५० व्यक्तियों को प्रशिक्षण दिया जा रहा है।

संवाद-सूचनाएँ :

नये प्रकाशन

जन-क्रान्ति की दिशा में—ले० विनोबा, पृष्ठ-संख्या ८०, मूल्य चार आना।

पलनी में सर्व-सेवा-संघ की प्रबंध-समिति की बैठक में ता० २० और २१ नवम्बर १९५६ को तंत्र-मुक्ति और निधि-मुक्ति के जो क्रान्तिकारी निर्णय हुए, वे और विनोबा के शब्दों में उनकी सर्वांगीण भूमिका तथा अन्य एतद् विषयक सामग्री इसमें संग्रहीत है। १९५७ के लिए विनोबाजी के आवाहन को समझने में उक्त पुस्तक मार्गदर्शक का काम करेगी।

पहली रोटी—ले० आशाराम वर्मा, पृष्ठ-संख्या ४०, मूल्य चार आना।

"पहली रोटी" नामक यह संगीतिका-संग्रह बालकों के लिए है। लेखक ने बाल-मन के अनुरूप गेय सामग्री के माध्यम से उक्त पुस्तक में भूदान-आंदोलन और श्रम की महत्ता को सुन्दर शब्दों में चित्रित किया है। इनका सफल अभिनय भी हो चुका है।

अखिल भारत सर्व-सेवा-संघ प्रकाशन, राजघाट, काशी

ग्राहकों के लिए सूचना

पत्र-व्यवहार में अपनी ग्राहक-संख्या लिखना आवश्यक है। ग्राहक-संख्या न लिखने से कारवाई में विलम्ब होता है। ग्राहक-संख्या और चन्दा-समाप्ति की तारीख रैपर पर पते के साथ छपी रहती है। उसे देख कर नोट कर लेना चाहिए।

—व्यवस्थापक, 'भूदान-यज्ञ'

बिहार राज्य के विभिन्न जिलों में भूवितरण-कार्य में सहायता देने और तत्संबंधी देखरेख के लिए कार्यकर्ताओं की नियुक्ति एक निश्चित अवधि के लिए करनी है। आवेदन-पत्र निम्न पते पर १० जनवरी '५७ तक पहुँचने चाहिए। पूरे विवरण के लिए पत्रव्यहार करें।

कदम कुआँ, पटना ३ —मंत्री, बिहार भूदान-यज्ञ-कमिटी

विषय-सूची

क्रम	विषय	लेखक	पृष्ठ
१.	बुद्धि-जीवियों और नौजवानों से—	जयप्रकाश नारायण	१
२.	दुनिया से निजी मालकियत मिटानेका युग-कार्य	विनोबा	३
३.	तंत्र-मुक्ति का पदार्थ-पाठ	सिद्धराज ढड्ढा	३
४.	क्रांतियज्ञ में बाल-गोपालों की दिव्य लीलाएँ	विमलाबहन	४
५.	निधि-मुक्ति का वास्तविक अर्थ	द्वारको सुंदरानी	५
६.	ग्रामदान के साध्य !	विनोबा	६
७.	गाँव-गाँव को निमंत्रण !	बाबा राघवदास	६
८.	सर्व-सेवा-संघ का चुनाव-प्रस्ताव और हमारा लक्ष्य	शंकरराव देव	७
९.	सच्चे मूल्यों की कसौटी	दादा धर्माधिकारी	८
१०.	१९५७ की व्यूह-रचना	ठाकुरदास बंग	९
११.	तंत्र-मुक्ति के फलितार्थ	लक्ष्मीनारायण भारतीय	१०
१२.	प्राप्त और वितरित भूमि आदि का विवरण	—	११
१३.	आगे की कार्य-रचना व उसके संबंध में सूचनाएँ	—	११
१४.	आंदोलन-समाचार, संवाद-सूचनाएँ आदि	—	१२

सिद्धराज ढड्ढा, सहमंत्री अ०भा० सर्व-सेवा-संघ द्वारा भार्गव भूषण प्रेस, वाराणसी में मुद्रित और प्रकाशित। पता: पोस्ट बॉक्स नं०४१, राजघाट, काशी।

www.vinoba.in